अंक २

संख्या ८

शुक्रवार

१८ जुलाई, १९५२

सत्यमेव जयते

1st Lok Sabha

संसदीय वाद विवाद

लोक सभा

पहला सत्र

शासकीय वृत्तान्त

(हिन्दी संस्करण)

भाग १—प्रश्न और उत्तर

विषय-सूची

प्रश्नों के मौखिक उत्तर [पृष्ठ भाग २८०९—२८२८]
प्रश्नों के लिखित उत्तर [पृष्ठ भाग २८२८—२८३४]

(मूल्य ४ आने)

413 P.S.D.

लोक सभा

शुक्रवार, १८ जुलाई १९५२

सदन की बैठक सवा आठ बजे समवेत हुई

[**अध्यक्ष महोदय** अध्यक्ष-पद पर आसीन थे]

प्रश्नों के मौखिक उत्तर

चौर्यानयन विरोधी युक्तियां

*१८५८. **सरदार हुक्म सिंह:** (क) क्या **प्राकृतिक संसाधन तथा वैज्ञानिक अनुसन्धान** मंत्री यह बतलाने की कृपा करेंगे कि दिल्ली राष्ट्रीय भौतिकीय प्रयोग शाला ने क्या हाल ही में कोई चौर्यानयन विरोधी युक्तियों की खोज की है ?

(ख) यदि हां, तो वे युक्तियां क्या हैं और क्या कहीं पर उनकी परीक्षा की गई है ?

शिक्षा, प्राकृतिक संसाधन तथा वैज्ञानिक अनुसन्धान मंत्री के सभा सचिव (श्री के० डी० मालवीय) : (क) और (ख). जी हां श्रीमान्। राष्ट्रीय भौतिकीय प्रयोगशाला ने एक विद्युदणु युक्ति निकाली है जिसका उपयोग चौर्यानयन विरोधी कार्य में लगे हुए पदाधिकारी सोना तथा अन्य बहुमूल्य धातुओं का पता लगाने के लिए कर सकते हैं। इस उपकरण की परीक्षा दिल्ली हवाई अड्डे तथा कलकत्ते के सीमा शूल्क गृह में की जा रही है।

सरदार हुक्म सिंह: उनके उपयोग से कितनी और कितने मूल्य की धातु खोजी गई थी ?

श्री के० डी० मालवीय : मुझे ज्ञात नहीं है कि कितनी धातु खोजी गई थी। मैं माननीय सदस्यों को अवगत कराता हूं कि वह अभी भी प्रयोग अवस्था में है। इस उपकरण के विभिन्न निदर्शन बनाये गए हैं और हम अभी भी यह जानने का प्रयत्न कर रहे हैं कि उनमें कौन सा सर्वोत्तम है।

सरदार हुक्म सिंह : क्या उससे सारी धातुएं खोजी जा सकेंगी या निश्चित दूरी के अन्दर की विशेष धातुएं ही ?

श्री के० डी० मालवीय : विशेष रूप से मूल्यवान धातुएं ही।

सरदार हुक्म सिंह : इसकी विफलता के कारणों को मालूम करने के लिए क्या दिल्ली की गृहनिर्माण फैक्टरी ने इस प्रयोगशाला की सहायता मांगी थी ?

अध्यक्ष महोदय : शान्ति, शान्ति; अब हम अगले प्रश्न को लेंगे।

टैक्निकल यूनिटों में भर्ती

*१८५९. **सरदार हुक्म सिंह :** (क) क्या **रक्षा** मंत्री यह बतलाने की कृपा करेंगे कि प्रादेशिक सेना के टैक्निकल यूनिटों में क्या संतोषजनक भर्ती हुई है ?

(ख) इन यूनिटों में भर्ती बढ़ाने के लिए क्या कार्यवाही की गई है ?

रक्षा मंत्री (श्री गोपालस्वामी) : (क) वह संतोषजनक नहीं हुई है।

(ख) २५ जून १९५२ को पूछे गये तारांकित प्रश्न संख्या ११५६ के सम्बन्ध में दिये गये उत्तर की ओर मैं माननीय सदस्य का ध्यान आकर्षित कराऊंगा।

सरदार हुक्म सिंह : क्या मैं जान सकता हूं कि जो स्वेच्छा से भर्ती के लिए आए थे उन में से क्या बहुत से कुछ कारणों से नहीं लिए गए ?

श्री गोपालस्वामी : मुझे निश्चय नहीं है कि उनकी संख्या बहुत बड़ी थी मुझे खेद है कि अस्वीकार किए गए लोगों के आंकड़े मेरे पास नहीं हैं।

सरदार हुक्म सिंह : क्या मैं यह जान सकता हूं कि प्रादेशिक सेना के लिए बनाया गया प्रलेखीय चलचित्र क्या अभी भी देश के विभिन्न भागों में दिखलाया जा रहा है ?

श्री गोपालस्वामी : जी हां।

सरदार हुक्म सिंह : किन मुख्य भाषाओं में यह चलचित्र बनाया गया था ?

श्री गोपालस्वामी : यह चलचित्र विभिन्न भाषाओं में हैं। उन पर काफ़ी रुपया लगा है। परन्तु मेरा विचार है कि उन में देश की अधिकांश मुख्य भाषाएं आ गई हैं।

श्री वी० पी० नायर : क्या मैं औद्योगिक श्रमिकों में से भर्ती किये गये टैक्निकल कर्मचारियों की संख्या जान सकता हूं।

श्री गोपालस्वामी : औद्योगिक श्रमिकों के मेरे पास कोई अलग आंकड़े नहीं हैं।

श्री वैलायुधन : भर्ती में असंतोषजनक प्रगति होने के मुख्य कारणों को क्या मैं जान सकता हूं। क्या यह देश में टैक्निकल कर्मचारियों के अभाव के कारण है या प्रचार तथा अन्य तरीकों के अभाव के कारण है जिनका विभाग उपयोग करता है।

श्री गोपालस्वामी : प्रचार बड़े जोर-शोर से किया गया है। परन्तु वास्तविक कठिनाइयां दुहरी हैं। पहली तो भर्ती हो सकने वालों में कुछ हिचक है और दूसरी कर्मचारी छोड़ने में नियोजकों की कुछ हिचक है। इन दोनों में उभयनिष्ट कारण उन दो पारिश्रमिकों का अन्तर है, जो उन्हें वैयक्तिक नौकरी में मिलता है तथा जो उन्हें प्रादेशिक सेना में प्रवेश होने पर मिलता है।

श्री बोगावत : क्या मैं जान सकता हूं कि १९५१ की तुलना में क्या प्रादेशिक सेना में भर्ती बढ़ रही है ?

श्री गोपालस्वामी : वह निश्चित रूप से बढ़ रही है।

श्री ए० सी० गुहा : क्या मैं जान सकता हूं कि गत वर्ष मूल अधिनियम में किये गये संशोधन से स्थिति में कोई सुधार हुआ है ?

श्री गोपालस्वामी : इतने शीघ्र यह नहीं कहा जा सकता। उसके प्रवृत्त होने के कुछ ही महीनों में निश्चित सुधार हुआ है।

सरदार हुकम सिंह : क्या म जान सकता हूं कि नगरीय क्षेत्रों में भर्ती के इस असंतोषजनक प्रगति के कारण कितने नगरीय यूनिटों को प्रान्तीय यूनिटों में परिवर्तित करना पड़ा ?

श्री गोपालस्वामी : मुझे खेद है, इस के लिए मुझे सूचना की आवश्यकता पड़ेगी।

श्री ए० सी० गुहा : क्या यह तथ्य है कि नियोजक के रूप में सरकारी कार्यालयों में भी इच्छुक उम्मीदवारों को उचित सुविधाएं नहीं दी जाती हैं ?

श्री गोपालस्वामी : सरकारी कार्यालयों को सूचना भेज दी गई है कि वे ध्यान रख कि कोई बाधा न डाली जाये ।

श्री केलप्पन : क्या यह इस कारण है कि सेवा की शर्तें पर्याप्त आकर्षक नहीं हैं ?

श्री गोपालस्वामी : प्रादेशिक बल में उन्हें जो वेतनादि मिलते हैं वे बहुत से मामलों में उन वेतनादि से कम होते हैं जो उन्हें वैयक्तिक सेवा में मिलते हैं। उन में अन्तर होता है। इस बात में भी कुछ अनिश्चितता होती है कि प्रादेशिक बलों से वापिस आने पर ये लोग अपनी पहली नौकरी में रख ही लिए जायेंगे । जसा कि माननीय सदस्यों को मालूम है कि जहां तक पिछले पहलू का सम्बन्ध है हम ने विधान पारित कर दिया है । पहले के सम्बंध में हम वैयक्तिक नियोजकों, और व्यापार मंडलों तथा सरकारी विभागों से केवल अपील कर सकते हैं।

भारतीय समुद्रतट का परिमाप

*१८६२. **श्री शिवनंजप्पा** : क्या रक्षा मंत्री यह बतलाने की कृपा करेंगे :

(क) भारतीय समुद्रतट परिमाप ने भारतीय समुद्रतट रेखा और बन्दरस्थानों तथा पत्तनों का परिमाप किया है; और

(ख) यदि हां, तो क्या उस परिमाप का ब्यौरा सदन-पटल पर रखा जायेगा ?

रक्षा मंत्री (श्री गोपालस्वामी) : (क) जी हां, ऐसा परिमाप किया जा रहा है ।

(ख) परिमाप अभिलेख बहुत भारी हैं और सुविधापूर्वक सदन पटल पर नहीं रखे जा सकते । उन में से कुछ जैसे रेखाचित्र बिक्री के लिये उपलब्ध किये गये हैं ।

श्री शिवनंजप्पा : परिमाप को ध्यान में रखते हुए क्या मैं जान सकता हूं कि पश्चिमी तट के भटकल और मालपे के विकास के लिए सरकार की क्या प्रस्थापनायें हैं

श्री गोपालस्वामी : क्या माननीय सदस्य का प्रश्न उन का पत्तनों के रूप में विकास करने से संबन्धित है ?

श्री शिवनंजप्पा : जी हां ।

श्री गोपालस्वामी : यह प्रश्न परिवहन मंत्रालय को सम्बोधित किया जाना चाहिये ।

श्री बी० शिवा राव : क्या मैं जान सकता हूं कि यह परिमाप यथार्थ रूप से केवल समुद्रतट रेखा को लागू होता है अथवा इसमें बंगाल की खाड़ी और अरब समुद्र इन दोनों में स्थित द्वीपों का भी लेखा किया जाता है ।

श्री गोपालस्वामी : उसका सम्बन्ध मुख्यतया तटरेखा से है । परिमाप के अन्तर्गत कोई विशेष द्वीप आते हैं अथवा नहीं इस विषय को मुझे देखना पड़ेगा ।

विश्वविद्यालयों को अनुदान

*१८६५. **श्री एस० एन० दास** : क्या **शिक्षा** मंत्री यह बतलाने की कृपा करेंगे :

(क) वैज्ञानिक और प्रौद्योगिक शिक्षा के लिये अनुदान पाने के लिए विश्व-विद्यालयों को जो निबन्धन और शर्तें पूरी करनी पड़ती हैं ; तथा

(ख) उन विश्वविद्यालयों के नाम प्रत्येक मामले में अनुदान की राशि के साथ, जिन्हें अब तक अनुदान मिला है ?

शिक्षा, प्राकृतिक संसाधन तथा वैज्ञानिक अनुसन्धान मंत्री के सभा सचिव (श्री के० डी० मालवीय) : (क) वैज्ञानिक शिक्षा के लिए अनुदान पाने के लिए विश्वविद्यालयों को यह समाधान कराना पड़ता है कि मुख्यता सम्भार खरीदने के लिए सहायता अपेक्षित है, या

(१) उन सक्रिय अनुसन्धान विभागों की सुविधाओं के सुधार और विस्तार के लिए, जिन के पास उचित योग्य कर्मचारी हैं और पर्याप्त स्थान है, या

(२) नये विभागों की स्थापना के लिये जो स्नातकोत्तर विकास के लिये आवश्यक समझे गए हैं । ऐसे विकास का पर्याप्त खर्च विश्वविद्यालय अन्य सोतों से प्राप्त करेगा ।

प्रौद्योगिक शिक्षा के लिए अनुदान अखिल भारतीय प्रविधिक शिक्षा परिषद् (आल इंडिया कौंसिल फार टेक्निकल एजूकेशन) की सिपारिश पर दिये जाते हैं तथा १६ जून १९५२ को प्रश्न संख्या ८५९ के लिये दिये गये मेरे उत्तर में वर्णित सिद्धान्तों से शासित होते हैं ।

(ख) एक विवरण सदन के पटल पर रखा जाता है । [**देखिये परिशिष्ट ९, अनुबन्ध संख्या ५**]

श्री एस० एन० दास : सदन के पटल पर दो विवरण रखे गये हैं, पहला विश्वविद्यालयों को स्नातकोत्तर और अन्वेषण विभागों के सुधार और विस्तार के लिये दिये गये अनुदान के बारे में है तथा दूसरा विभिन्न विश्वविद्यालयों को अपनी इंजीनियरी और टैक्नालाजिकल संस्थाओं को सबल बनाने के लिए दिए गए अनुदान के बारे में है । क्या मैं यह जान सकता हूं कि जब अनुदानों के प्रश्न पर विचार किया जाता है तब क्या आवेदन पत्र बुलाये गये थे या बुलाये जाते हैं ?

श्री के० डी० मालवीय : श्रीमान्, विश्वविद्यालयों को ये अनुदान, ऐसे विकासों से संबंधित वैज्ञानिक जनशक्ति समिति (सायंटिफिक मैनपावर कमिटी) की सिपारिशों के फलस्वरूप, १९४९-५० से दिए जा रहे हैं । ऐसी योजनाएं विश्वविद्यालयों से प्राप्त होती हैं तथा मंत्रालय द्वारा जांची जाती हैं ।

श्री एस० एन० दास : मैं यह जानना चाहता था कि क्या विश्वद्यालयों से अपनी अपेक्षाएं समक्ष रखने के लिए कहा जाता है अथवा उन्हें इन अनुदानों के लिए आवेदन करने के लिए कहा जाता है ?

श्री के० डी० मालवीय : जैसा कि इन रेखाचित्रों से मालूम पड़ेगा, अनुदान दो प्रकार के होते हैं । पहले प्रकार के तो मंत्रालय अखिल भारतीय प्रौद्योगिक शिक्षा परिषद की सिपारिश पर देता है, मुझे निश्चय नहीं है परन्तु शायद दूसरों के

लिए ये विश्वविद्यालय मंत्रालय से प्रत्यक्ष अभिवेदन करते हैं ।

श्री एस० एन० दास : श्रीमान्, मैं जान सकता हूं कि क्या कोई मण्डली या समिति है जो अनुदानों का विनिश्चय करती है ?

श्री के० डी० मालवीय : वह मंत्रालय करता है ।

श्री एस० एन० दास : मेरा प्रश्न है कि इन बातों का विनिश्चय करने के लिए क्या मंत्रालय ने कोई समिति या वैयक्तिक पदाधिकारी नियुक्त किये हैं ।

श्री के० डी० मालवीय : मुझे पूर्वसूचना अपेक्षित है ।

श्री एम० एल० द्विवेदी : क्या माननीय मंत्री यह बतलाने की कृपा करेंगे कि अलीगढ़ विश्वविद्यालय ने जो गांधी आई हास्पिटल में आप्थैलमालाजी के विषय पर एक शाखा खोलने का विचार किया था उस सम्बन्ध में बिल्डिंग बनाने के लिए उसने कोई प्रार्थना की गई है? और अगर की है तो सरकार ने क्या निर्णय किया ?

श्री के० डी० मालवीय : मुझे इस विशेष सहायता की इस समय कोई सूचना नहीं है ।

श्री गणपति राम : क्या माननीय मंत्री बतला सकते हैं कि बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी में टैक्निकल एजकेशन के विकास के लिए कितना रुपया दिया गया है ?

श्री के० डी० मालवीय : वह इस, खाते से आपको मालूम हो जायगा । मगर माननीय सदस्य को मैं यह सूचित करूंगा कि बनारस यूनिवर्सिटी को इस के अतिरिक्त इमारतों के लिए कुछ और भी सहायता प्रदान की गई है :

श्री एस० एस० मोरे : क्या मैं मंत्री जी से पूछ सकता हूं कि इस प्रयोजन के लिए पूना विश्वविद्यालय को क्या अनुदान दिये गये हैं ?

श्री के० डी० मालवीय : सारिणी दर्शाती है कि स्नातकोत्तर और अनुसन्धान अध्ययन के विस्तार के लिए पूना विश्व-विद्यालय को ४३०,००० रुपये मिले ।

श्री एस० एस० मोरे : और क्या...

अध्यक्ष महोदय : वे विवरण को देख लें ।

श्री सारंगधर दास : श्रीमान्, क्या में जान सकता हूं कि बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी को कृषि महाविद्यालय के विकास के लिए क्या कोई अनुदान दिया गया है ?

श्री के० डी० मालवीय : मुझे विशेष सूचना नहीं है ।

श्री एस० एन० दास : श्रीमान्, विवरण से यह प्रतीत होता है कि कुछ विश्व-विद्यालयों को अनुदान लाखों रुपयों के दिये गये हैं और पटना और राजपूताने के दो विश्वविद्यालयों को बहुत छोटी राशियां दी गई हैं । श्रीमान्, क्या मैं जान सकता हूं कि इसके कोई विशेष कारण हैं ?

श्री के० डी० मालवीय : इन अनुदानों को देते समय हम जिन सिद्धान्तों का अनुसरण करते हैं उनका वर्णन में पहिले ही कर चुका हूं ।

केन्द्रीय शिक्षा संस्था

*१८६७. **श्री एस० सी० सामन्त** : क्या शिक्षा मंत्रीं यह बतलाने की कृपा करेंगे :

(क) केन्द्रीय शिक्षा संस्था द्वारा आरम्भ से किए गए अनुसंधानों और प्रयोगों के परिणाम क्या हैं; तथा

(ख) संस्था में जो एम० ईडी० का प्रशिक्षण दिया जाता है उसमें अन्य विश्वविद्यालयों में दिये जाने वाले प्रशिक्षण की तुलना में क्या विशेषता है ?

शिक्षा, प्राकृतिक ससाधन तथा वैज्ञानिक अनुसन्धान मत्री के सभासचिव (श्री के० डी० मालवीय) : (क) जो परिणाम प्राप्त हुए हैं उनके बारे में कुछ भी कहना अभी बहुत शीघ्र होगा तथापि जो काम किया जा चुका है और अब किया जा रहा है उसका विवरण सदन के पटल पर रखा जाता है। [**देखिये परिशिष्ट ९, अनुबन्ध संख्या ६**]

(ख) सब भारतीय विश्वविद्यालयों में एम० ई डी० अनुसन्धान उपाधि (रिसर्च डिग्री) है। इस संस्था के पाठ्यक्रम के विशिष्ट लक्षण ये हैं :

(१) शैक्षणिक अनुसन्धान की रीति-विद्या (मेथोडोलाजी) पर अनिवार्य पाठ्य-क्रम (२) प्रत्येक एम० ई डी० विद्यार्थी द्वारा अनुसन्धान अभिकार्य किया जाना और (३) परमावश्यक प्रयोगशाला प्रशिक्षा।

श्री एस० सी० सामन्त : माननीय मंत्री जी ने कहा कि यह आल इंडिया इंस्टीट्यूट है। क्या मैं जान सकता हूं कि दूसरी स्टेट्स से छात्रों का प्रवेश किया जाता है या नहीं और कोई स्कालरशिप दी जाती है या नहीं ?

श्री के० डी० मालवीय: मेरे पास इसकी तो कोई सूचना नहीं है कि दूसरे किसी प्रदेश से विद्यार्थियों को यहां भर्ती नहीं किया गया, लेकिन मेरे पास उन की संख्या है।

श्री एस० सी० सामन्त : क्या गवर्नमेंट का कोई प्रस्ताव है कि ऐसे दूसरे स्टेट्स के छात्रों को प्रवेशपत्र दिया जाय क्योंकि हमें जो स्टेटमेंट मिला है उसमें हम देखते हैं कि जिस किस्म का रिसर्च का काम यह करते हैं उस में यह छात्र लोग साथ दे सकते हैं।

श्री के० डी० मालवीय: अध्यक्ष महोदय, मेरी समझ में यह प्रश्न नहीं आया।

अध्यक्ष महोदय : यदि मैंने उन्हें ठीक तरह से समझा है तो विवरण का अर्थ है कि यह विशेष मण्डली विदेशी छात्रों को भी सहायता दे रही है। इसलिए वे उन छात्रों की संख्या जानना चाहते हैं।

श्री के० डी० मालवीय : मेरे सामने जो सारणी है वह यह नहीं दर्शाती कि विदेशी छात्र भी हैं।

अध्यक्ष महोदय: क्या वह यह नहीं बतलाती....

श्री एस० सी० सामन्त : मैं यह जानना चाहता था कि यह संस्था क्या यहां विद्यार्थियों को बी० टी० और एम० ईडी० पाठ्यक्रमों की सुविधाऐं देती है और अधिछात्रों (फेलो) तथा स्वयं विद्यार्थियों द्वारा किए गये अनुसन्धान कार्य से संलग्न होने की क्या उन्हें सुविधाएं दी जा रही हैं। श्रीमान् जी, क्या मैं जान सकता हूं कि सरकार के सामने क्या अन्य राज्यों से छात्रवृत्तियों वाले विद्यार्थियों को प्रवेश देने का कोई प्रस्ताव है ?

श्री के० डी० मालवीय : यदि माननीय सदस्य मंत्रालय को ऐसा सुझाव भेजेंगे तो हम उस पर विचार करेंगे।

श्री टी० एस० ए० चेटिट्यार : क्या मैं जान सकता हूं कि सरकार द्वारा किया गया सारा शैक्षणिक अनुसन्धान क्या यहां संस्था में किया जा रहा है या अन्य प्रांतों और राज्यों के शैक्षाणिक अनुसन्धान की सहायता से ?

श्री के० डी० मालवीय : जैसा मैंने कहा सब विश्वविद्यालयों को यह सुविधा प्राप्त है। हाल ही में हमने विस्तीर्ण अनुसन्धान करने के लिए एम० ईडी० कक्षाएं खोली हैं।

श्री टी० एस० ए० चेट्टियार : प्रश्न यह था कि अन्यत्र जो प्रयास किये जाते हैं उन्हें क्या भारत सरकार सहायता देती है।

श्री के० डी० मालवीय : मुझे ज्ञात नहीं कि अन्य विश्वविद्यालयों को कोई विशिष्ट सहायता दी जाती है।

डा० पी० एस० देशमुख : क्या माननीय मंत्री जी हमें बतलायेंगे कि अभी तक इस संस्था विषयक अनावर्ती व्यय कितना है और आवर्ती व्यय कितना ?

श्री के० डी० मालवीय : मुझे पूर्व-सूचना चाहिये।

श्री एच० एन० मुखर्जी : क्या यह तथ्य है कि इस संस्था में चांगकाई शेक के चीन का समागत प्राध्यापक है और गत वर्ष जो चीनी सांस्कृतिक शिष्टमण्डल यहां आया था, तथा इस संस्था को देखने के लिये गया था उसने इस विशिष्ट समागत प्राध्यापक की उपस्थिति के विरोध स्वरूप वह स्थान छोड़ दिया था।

श्री के० डी० मालवीय : मुझे कोई सूचना नहीं है।

डा० जयसूर्य : यदि यह केन्द्रीय संस्था मुख्यतया अनुसन्धान संस्था है तो कर्मचारी कितना प्रतिशत समय अनुसन्धान कार्य में लगाते हैं।

श्री के० डी० मालवीय : मेरे पास यहां प्रतिशतता के आंकड़े नहीं हैं।

विदेशी सहायता

*१८६८. **प्रो० अग्रवाल** : क्या **वित्त** मंत्री यह बतलाने की कृपा करेंगे :

(क) विदेशी सहायता की अधिकतम राशि जो भारत सरकार सन् १९५२-५३ में प्राप्त करने की आशा करती है ; तथा

(ख) वित्तीय सहायता की अधिकतम राशि जो भारत सरकार, पंचवर्षीय योजना को पूरा करने के लिए संयुक्त राज्य अमरीका से प्राप्त करने की आशा करती है।

वित्त मंत्री (श्री सी० डी० देशमुख) : (क) और (ख)। जो राशि संभवतया प्राप्त होगी उस का अनुमान लगाना संभव नहीं है।

प्रो० अग्रवाल : क्या मैं जान सकता हूं कि अमेरिका के घटाए गए विनियोग विधेयक का, भारत-संयुक्तराष्ट्र टैक्निकल सहायता के अन्तर्गत किए गए करारों पर क्या किसी भी प्रकार का असर पड़ता है ?

श्री सी० डी० देशमुख : जी नहीं, श्रीमान्। यह उस वर्ष के बारे में है जो पहली जुलाई से आरम्भ हुआ है।

प्रो० अग्रवाल : क्या मैं जान सकता हूं कि आयरन एन्ड स्टील वर्कस के लिए विश्व बैंक से उधार लेने के लिए हाल ही में जो वार्त्ता हुई थी उसके विषय में क्या कुछ विनिश्चय हुआ है ?

श्री सी० डी० देशमुख : जी नहीं श्रीमान्, वार्त्ताएं शीघ्र ही होंगीं।

श्री बी० पी० नायर: क्या मैं जान सकता हूं कि पंचवर्षीय योजना का वित्त-प्रबंधन करने के लिए क्या सरकार के पास कोई वैकल्पिक प्रस्ताव हैं, यदि सरकार को संयुक्त राज्य अमेरिका से और अधिक सहायता नहीं मिले अथवा सरकार अमेरिका से सम्बन्ध तोड़ दे ?

श्री सी० डी० देशमुख: अभी तक हमें योजना का अंतिम संस्करण नहीं मिला।

वाणिज्यिक लेखा-परीक्षा संगठन

*१८६९. **श्री के० सी० सोधिया**: क्या **वित्त** मंत्री यह बतलाने की कृपा करेंगे:

(क) (१) पदाधिकारियों, (२) अघोषित कर्मचारी शीर्षों के अंतर्गत वाणिज्यिक लेखा-परीक्षा संगठन की कितनी संख्या है ;

(ख) अभी वे किन राज्यों में नियुक्त किये गये हैं; तथा

(ग) अन्न इत्यादि की वसूली सम्बन्धी सौदे क्या वाणिज्यिक सौदे समझे जाते हैं; यदि नहीं तो क्यों नहीं ?

वित्त मंत्री (श्री सी० डी० देशमुख): (क) और (ख)। भारतीय लेखापरीक्षा और लेखा विभाग में वाणिज्यिक लेखा-परीक्षा के लिए अभी कोई पृथक संगठन नहीं है। विभिन्न असैनिक, पोस्टल, रेलवे और रक्षा लेखा-परीक्षा कार्यालयों को अपने समस्त कार्यों के अंग के रूप में सरकार के वाणिज्यिक संगठन की देख भाल करनी पड़ती है। अलग कर्मचारी न होने के कारण केवल वाणिज्यिक लेखा-परीक्षा में लगे हुए पदाधिकारियों और कर्मचारियों की संख्या बताना संभव नहीं है।

तथापि अलग वाणिज्यिक लेखापरीक्षा पक्ष का संगठन करने तथा बनाने की दृष्टि से नियंत्रक महालेखा परीक्षक के कार्यालय में एक सहायक लेखा पदाधिकारी और छः अधीनस्थों के सहित वाणिज्यिक लेखापरीक्षा पदाधिकारी का पद बनाया गया है।

(ग) जी हां, श्रीमान्।

श्री के० सी० सोधिया: वे किन राज्यों में पदस्थापित किए जाएंगे ?

श्री सी० डी० देशमुख: श्रीमान्, इस प्रश्न के लिए मुझे सूचना की आवश्यकता है।

विशारद समिति (आबकारी)

*१८७०. **डा० अमीन**: क्या **वित्त** मंत्री यह बतलाने कीं कृपा करेंगे:

(क) क्या उस विशारद समिति (आबकारी) ने जो औषधियों और दवाओं के बनाने, पास रखने और बेचने पर शुल्क संग्रह करने को विनियमित करने वाले उत्पाद नियमों में एकरूपता लाने के लिए सिपारिश करने के हेतु भारत सरकार ने नियुक्त की थी, कोई प्रतिवेदन प्रस्तुत किया है; और

(ख) यदि (क) का उत्तर हां है तो उन सिपारिशों पर सरकार ने क्या कार्यवाही की है या करने का विचार कर रही है ?

वित्त राज्य-मंत्री (श्री त्यागी): (क) जी हां, विशारद समिति का प्रतिवेदन प्राप्त हो गया है।

(ख) समिति द्वारा की गई कुछ अस्थायी सिपारिशों के अनुसरण में और राज्य सरकारों की सहमति से स्प्रिट वाली नियंत्रित और अनियंत्रित वर्गों की

औषधियों और प्रसाधन वस्तुओं पर शुल्क की एकरूप दरें स्थिर कर दी गई हैं और भारत सरकार के अनुमोदन के बिना प्रत्येक वर्ग के अंतर्गत आने वाली निर्मितियों की सूची में परिवर्तन नहीं किए जा सकते ।

विशारद समिति के प्रतिवेदन की कई सिफारिशों पर, जो जटिल प्रकार की हैं, अगली कार्यवाही करना विचाराधीन है ।

डा० अमीन : क्या सरकार सदन के पटल पर विशारद समिति के प्रतिवेदन की प्रति रखने की कृपा करेगी ?

श्री त्यागी : जी हां, श्रीमान जी । मैं बड़ी प्रसन्नता से उसे सदन के पटल पर रख दूंगा ।

वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावलि

*१८७१ **श्री बलवन्त सिन्हा महता : क्या शिक्षा** मंत्री यह बतलाने की कृपा करेंगे कि वे आधारभूत सिद्धान्त क्या हैं जिन पर राष्ट्रभाषा की वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावलि बनाई जा रही है ?

शिक्षा, प्राकृतिक संसाधन तथा वैज्ञानिक अनुसन्धान मंत्री के सभा सचिव (श्री के० डी० मालवीय) : वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावलि पर्षद् और भाषाविज्ञ समिति द्वारा अब तक बनाये गये निर्देशक सिद्धान्तों का विवरण सदन के पटल पर रखा जाता है। [**देखिये परिशिष्ट ९, अनुबन्ध संख्या ७**]

श्री बलवन्त सिन्हा महता : क्या मैं जान सकता हूं कि प्रादेशिक भाषाओं के लिए वहां कितने भाषाविज्ञ काम कर रहे हैं, वे क्या हैं और उन्हें किस के लिए वेतन दिया जाता है ?

श्री के० डी० मालवीय : विभिन्न विज्ञानों से व्यवहार करने के लिए दस विशारद समितियां हैं । समिति के सदस्यों के नाम अभी मेरे पास नहीं हैं । समितियां गणित, कृषि, भौतिकी, वनस्पति शास्त्र, भूतत्व शास्त्र, भैषगिकी, समाज विज्ञान, प्रशासन, रसायन शास्त्र और प्रतिरक्षी सेवाओं के लिए हैं ।

श्री बलवन्त सिन्हा महता : मैं उनके नाम जानना चाहता था जो प्रादेशिक भाषाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं ।

श्री० के० डी० मालवीय: उस प्रश्न के लिए मुझे सूचना चाहिए ।

श्री बलवन्त सिन्हा महता: क्या मैं जान सकता हूं कि विज्ञान की किन शाखाओं म काम आरम्भ किया गया है और कब तक क्रमशः स्कूल और कालेज की कक्षाओं के पाठ्यक्रमों के पूरे हो जाने की आशा हैं ?

श्री के० डी० मालवीय : जैसा कि मैंने कहा है, दस शाखाओं में काम आरम्भ किया गया है। मैट्रीकुलेशन परीक्षा के लिए पारिभाषिक शब्दों का निर्माण अगले वर्ष तक पूरा हो जाने की आशा है ।

डा० पी० एस० देशमुख : श्रीमान्, मैं जान सकता हूं कि क्या यह तथ्य है कि इस का अधिकांश कार्य मध्य प्रदेश राज्य में पहिले से ही डा० रघुवीर द्वारा पूरा किया जा चुका है ?

प्रधान मंत्री (श्री जवाहरलाल नेहरू) : जी हां, हमें इस तथ्य का थोड़ा ज्ञान

है पर उस सारे काम को फिर से करना पड़ेगा ।

श्री रघवय्या : क्या सरकार सब वैज्ञानिक शब्दों का शब्दकोष बनाने का विचार कर रही है ?

श्री के० डी० मालवीय : जी हां, श्रीमान् ।

श्री गणपति राम : क्या माननीय मंत्री बतला सकते हैं कि साइंटिफिक टर्मनौलिजी कमेटी में हर एक यूनिवर्सिटियों के भी प्रतिनिधि रखे गये हैं, यदि हां, तो क्या कोई बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय का भी प्रतिनिधि रखा गया है ?

श्री के० डी० मालवीय : जी नहीं, यूनिवर्सिटियों के आधार पर उसमें प्रतिनिधि नहीं रखे गये हैं ।

श्री टी० एस० ए० चेट्टियार : क्या मैं जान सकता हूं कि सरकार ने पथप्रदर्शी सिद्धान्त के रूप में क्या यह स्वीकार कर लिया है कि यथासंभव वे अन्तर्राष्ट्रीय पारिभाषिक शब्दावलि को अंगीकार करेंगे ?

श्री जवाहरलाल नेहरू : जी हां, श्रीमान् । इस विषय में कोई एक पथप्रदर्शी सिद्धान्त होना बड़ा कठिन है। हमें अन्य बहुत से कारकों पर विचार करना है। परन्तु वैज्ञानिक और पारिभाषिक पदों के बारे में तो यथासंभव हम अन्तर्राष्ट्रीय शब्दों का ही उपयोग करना चाहेंगे जो पहले से ही भारत में सामान्य उपयोग में आ गए हैं ।

श्री ए० सी० गुहा : क्या इस बात का ध्यान रखने के लिये कोई प्रयत्न हुआ है कि भारत की सब भाषाओं में एक से ही पद लिए जायें ?

श्री जवाहरलाल नेहरू : यही तो सारा विचार है । वह यह कि वही अन्तर्राष्ट्रीय पद यथासंभव भारत की विभिन्न भाषाओं में उपयोग किये जायें ।

श्री वी० पी० नायर : क्या मैं जान सकता हूं कि राष्ट्र भाषा में वैज्ञानिक पर्याय क्या सरल भाषा में होंगे या वे प्राचीन संतापकारी भाषा में भी होंगे ?

श्री जवाहरलाल नेहरू : आशा की जाती है कि वे यथासंभव सरल होंगे ; परन्तु कुछ पारिभाषिक पद किसी प्रकार से भी सरल नहीं हैं ।

प्रश्नों के लिखित उत्तर

मीन क्षेत्रों का विकास

*१८६०. **डा० राम सुभग सिंह :** (क) क्या वित्त मंत्री यह बतलाने की कृपा करेंगे कि संयुक्त राज्य सरकार ने क्या कुछ अनुदान इस देश में मीनक्षेत्रों के विकास के लिये बांट दिये हैं ?

(ख) यदि ऐसा है तो इस प्रयोजन के लिये बांटी गई रुपयों की कुल राशि कितनी है ?

वित्त मंत्री (श्री सी० डी० देशमुख) : (क) जी हां श्रीमान् ।

(ख) संयुक्त राज्य सरकार द्वारा २,४६२,००० डालरों की राशि और भारत सरकार द्वारा ६९ लाख रुपये इस प्रयोजन के लिये बांट दिये गये हैं। ११ जून १९५२ को तारांकित प्रश्न संख्या ७१३ के उत्तर में इस योजना विषयक क़र्मात्मक करार संख्या ५ की एक प्रति सदन के पटल पर रखी गई थी ।

बैंकों का निरीक्षण

*१८६३. **सेठ गोविन्द दास:** क्या **वित्त** मंत्रीउन अनुसूचित बैंकों की संख्या बतलाने की कृपा करेंगे जिन का १९५१-५२ में रिजर्व बैंक द्वारा निरीक्षण किया गया था नियमों का पालन न करने वाले बैंकों के विरुद्ध क्या कार्यवाही की गई ?

वित्त मंत्री (श्री सी० डी० देशमुख): वित्तीय वर्ष १९५१-५२ में बंकिंग कम्पनीज अधिनियम १९४९ की विभिन्न धाराओं के अन्तर्गत रिजर्व बैंक आफ इण्डिया द्वारा ४१ अनूसूचित बैंकों का निरीक्षण किया गया था । बैंकों को छोटे दोषों का ध्यान दिलाया गया था और उन्हें संशोधन करने के लिये कहा गया था । अन्य अनियमिताओं के लिए बैंकों से स्पष्टोकरण मांगे गए थे जिस से कि रिजर्व बैंक कार्यबाही करने पर विचार कर सके । अभी तक इन बैंकों में से किसी पर भी दंड सम्बन्धी कार्यवाही नहीं की गई है ।

रिजर्व बैंक के परिपत्र

*१८६४. **सेठ गोविन्द दास** : क्या **वित्त** मंत्री यह बतलाने की कृपा करेंगे :

(क) रिजर्व बैंक द्वारा मार्च १९५२ में अनुसूचित बैंकों के नाम निकाले गये ऐसे परिपत्रों की संख्या जिन में ऋण और अग्रिम धन के बारे में नीति निश्चित कीगई हो या उसमें परिवर्तन किये गये हों ;

(ख) वाजार में मंदी आदि लाने में इन पत्रों का कितना हाथ है ?

वित्त मंत्री (श्री सी० डी० देशमुख): (क) रिजर्व बैंक आफ इंडिया द्वारा मार्च १९५२ में ऐसा कोई परिपत्र नहीं निकाला गया था ।

(ख) प्रश्न नहीं उठता ।

भविष्य निधि लेखों का यंत्रीकरण

*१८६६. **श्री एन० एस० नायर :** क्या **वित्त मंत्री** यह वतलाने की कृपा करेंगे कि :

(क) सन् १९४८-४९ के लेखों की लोक लेखा समिति के द्वित्तीय रिपोर्ट के ३३वें पृष्ठ पर दर्शायी गयी भविष्य निधि लेखों की अव्यवस्थित दशा क्या अब ठीक कर दी गई है ?

(ख) क्या वह सारी या उस का कोई हिस्सा लेखों के यंत्रीकरण के कारण था ; और

(ग) यदि हां, तो भविष्य में ऐसी अशुद्धियों को रोकने के लिए क्या कार्यवाहियां की गई हैं ?

वित्त मंत्री (श्री सी० डी० देशमुख) (क) नियंत्रक महालेखा परीक्षक द्वारा किये गये विशेष उपायों के परिणाम स्वरूप अब स्थिति बहुत सुधर गई है ।

(ख) वेतन विपत्र लेने वाले कार्यालयों की विफलता तथा भारत विभाजन के कारण हुई गड़बड़ी आदि विभिन्न कारणों से खराबी हूई थी । कुछ स्थानों में लेखे के लिये मशीनों का उपयोग भी अंशदायी कारण था।

(ग) मशीनों से व्युत्पन्न कठिनाईयें थीं कि वे बहुधा बिगड़ जातीं थीं और अतिरिक्त भागों के अभाव तथा

यांत्रिक विशारदों द्वारा शीघ्र ध्यान देने की कमी के कारण बार बार काम रुक जाने से कार्य अवशिष्ट रह गया। काम के लिये आवश्यक प्रशिक्षित चालकों की पूर्ति भी पर्याप्त नहीं थी। तब से यांत्रिकों की संख्या बढ़ा दी गई है ; अधिक मशीनें खरीद ली गई हैं, आवश्यकता पड़ने पर सुधारने के लिये अधिक उत्तम प्रबन्ध कर लिये गये हैं और मशीनों को चलाने के लिये कर्मचारियों को प्रशिक्षित करने की कार्यवाही भी की गई है। काम करने की सुधरी हुई रीतियां चला दी गई हैं।

भारतीय सेना

४५१. **सेठ गोविन्द दास :** क्या **रक्षा** मंत्री यह बतलाने की कृपा करेंगे कि ३१ मार्च, १९५२ को भारतीय सेना में प्रत्येक राज्य के कितने प्रतिशत व्यक्ति थे ?

रक्षा मंत्री (श्री गोपालस्वामी) : ३१ मार्च, १९५२ की सूचना अभी सुगमता से उपलब्ध नहीं है : ३१ दिसम्बर १९५१ को जो स्थिति थी उससे सम्बन्धित सूचना सदन पटल पर रखी जाती है। [**देखिये परिशिष्ट ९, अनुबन्ध संख्या ८**]

रक्षा विभाग में भाण्डारों की हानि

४५२. **श्री एम० एस० गुरुपादस्वामी :** क्या **रक्षा** मंत्री यह बतलाने की कृपा करेंगे :

(क) सन् १९४८-४९, १९४९-५० १९५०-५१ और १९५१-५२ में पदाधिकारियों की असावधानी के कारण क्या रक्षा विभाग में भाण्डों की कोई हानि हुई है ;

(ख) यदि हां, तो ऐसे पदाधिकारियों के विरुद्ध सरकार ने कार्यवाही की है ?

रक्षा मंत्री (श्री गोपालस्वामी) : (क) यदि माननीय मंत्री प्रत्येक वर्ष के विनियोग विधेयक को देखेंगे तो उन्हें मालूम पड़ेगा कि चोरी, धोखे अथवा असावधानी के कारण हुई हानियां विशेष रुप से दर्शायी गई हैं।

(ख) प्रमाणित हुई असावधानी के सब सामलों में उचित अनुशासिक कार्यवाही की गई है।

सामाजिक तनाव पर अनुसन्धान

४५३. **श्री लोकनाथ मिश्र :** क्या **शिक्षा** मंत्री यह बतलाने की कृपा करेंगे कि सामाजिक तनाव के विभिन्न पहलुओं पर अनुसंधान कार्य में लगी हुई भारत में कितनी अनुसंधान टुकड़ियां हैं और उनके अनुसंधान का क्षेत्र और व्याप्ति क्या है ?

शिक्षा, प्राकृतिक संसाधन तथा वैज्ञानिक अनुसन्धान मंत्री के सभा सचिव (श्री के० डी० मालवीय) : एक विवरण सदन पटल पर रखा जाता है। [**देखिये परिशिष्ट ९, अनुबन्ध संख्या ९**]

दिल्ली पब्लिक लायब्रेरी

४५४. **श्री एस० एन० दास :** क्या **शिक्षा** मंत्री यह बतलाने की कृपा करेंगे :

(क) यूनैसको जनता पुस्तकालय योजना के अन्तर्गत आरम्भ की गई दिल्ली पब्लिक लायब्रेरी द्वारा अभी तक की गई कार्यवाहियां क्या हैं ; और

(ख) समाज शिक्षा के कार्यक्रम में कितने नवसाक्षरों को सहायता मिली है।

शिक्षा, तथा प्राकृतिक संसाधन व वैज्ञानिक अनुसन्धान मंत्री के सभा सचिव (श्री के० डी० मालवीय): (क) दिल्ली पब्लिक लायब्रेरी १ नवम्बर १९५१ को जनता के लिये खोली गई थी। उसमें केन्द्रीय प्रौढ़ पुस्तकालय, बाल विभाग और समाज शिक्षा विभाग हैं। विभिन्न विभागों की कार्यवाहियां संलग्न विवरण में दी गई हैं। [**देखिये परिशिष्ट ९, अनुबन्ध संख्या १०**]

(ख) पुस्तकालय के समाज शिक्षा विभाग द्वारा दी गई सुविधाओं से ८,३८६ व्यक्तियों ने लाभ उठाया है।

नवसाक्षरों को पुस्तकें उपलब्ध करने के लिये पुस्तकालय, दिल्ली नगर समिति से भी सहयोग करता है।

शुक्रवार,
१८ जुलाई, १९५२

सत्यमेव जयते

संसदीय वाद विवाद

1st

लोक सभा

पहला सत्र

शासकीय वृत्तान्त

(हिन्दी संस्करण)

Preservation Unit
18.3.92
Fumigated
Parliament Library

भाग २—प्रश्न और उत्तर से पृथक् कार्यवाही

लोक सभा

शुक्रवार, १८ जुलाई, १९५२

सदन की बैठक सवा आठ बजे समवेत हुई।

[**अध्यक्ष महोदय** अध्यक्ष-पद पर आसीन थे]

प्रश्न और उत्तर

(देखिये भाग १)

८-४२ म० पू०

जनाब अमजद अली (ग्वालपाड़ा-गारो पहाड़ियां): आशा है माननीय राज्य मंत्री आसाम की हाल के बाढ़ के तथ्य बतायेंगे। क्या रेल और टेलीफोन लाइनें जुड़ गई हैं और वह शेष भारत से संबद्ध हो गया है?

गृह कार्य तथा राज्य मंत्री (डा० काटजू): मैं ने टेलीफोन और डाक से वृत्तांत मंगाया है। तब तक का संवाद समाचार पत्रों में देखा जा सकता है।

सदन पटल पर रखे गये पत्र

(१) **त्रावणकोर कोचीन और रक्षित बैंक के बीच करार।**

(२) **मध्य भारत और रक्षित बैंक के बीच करार।**

वित्त मंत्री (श्री सी० डी० दशमुख): भारत के रक्षित बैंक अधिनियम, १९३४ की धारा २१क की उपधारा (२) के अधीन मैं ३० जून १९५२ को हुए निम्न मुख्य और

अनुपूरक करारों की एक एक प्रति सदन पटल पर रखता हूं :—

(१) त्रावणकोर कोचीन के राजप्रमुख और भारत के रक्षित बैंक के बीच करार;

[**पुस्तकालय में रखा गया, देखिए संख्या पी० ३१/५२**]

(२) मध्य भारत के राजप्रमुख और भारत के रक्षित बैंक के बीच करार।

[**पुस्तकालय में रखा गया; देखिए संख्या पी० ३२/५२**]

सारभूत वस्तुऐं (क्रय अथवा विक्रय पर कर की घोषणा तथा विनियमन) विधेयक

प्रवर समिति के प्रतिवेदन का पुरःस्थापन

वित्त मंत्री (श्री सी० डी० देशमुख): मैं संविधान के अनुच्छेद २८६ के खंड (३) के अनुसार समुदाय के जीवन के लिये कुछ सारभूत वस्तुओं की घोषणा करने वाले एक विधेयक के प्रवर समिति द्वारा प्रतिवेदित रूप को प्रस्तुत करता हूं।

लेख्य प्रमाणक विधेयक

प्रवर समिति के प्रतिवेदन का पुरः स्थापन

श्री पाटस्कर (जलगांव): मैं लेख्य प्रमाणकों की वृति का नियमन करने वाले विधेयक पर प्रवर समिति के प्रतिवेदन को प्रस्तुत करता हूं।

निवारक-निरोध (द्वितीय संशोधन) विधेयक

अध्यक्ष महोदय : अब सदन निवारक निरोध विधेयक १९५० को फिर संशोधित करने वाले प्रस्ताव को लेकर और आगे बढ़ेगा ।

गृह कार्य तथा राज्य मंत्री (डा० काटजू) : चूंकि कल मेरे द्वारा दिये गये आंकड़े १५ जून १९५२ तक मुझे प्राप्त सूचना पर आधारित थे, मैंने कल फोन द्वारा बंगाल से जांच की थी । मुझे बताया गया है कि साम्यवादी दल का कोई भी सदस्य अब जेल में नहीं है, और कारावकाश (पैरोल) पर छुटने वालों को औपचारिक रूप में छोड़ दिया गया है । क्रांतिकारी साम्यवादी दल के, जिनको भारतीय साम्यवादी दल वाले सच्चा साम्यवादी नहीं समझते, ४७ सदस्य जेल में हैं । इसका निष्कर्ष यह होगा कि पूरे भारत में सब प्रकार के लाल साम्यवादी तथा दूसरे प्रकार के कुल १३ साम्यवादी होंगे । मैं नहीं समझता कि सामने बैठे हुए मेरे मित्रों द्वारा उन में से एक भी अपने दल से सम्बन्धित माना जाता है । अब जनवरी १९५१ से मई, १९५२ तक के आंकड़े जो मेरे पास हैं, बताते हैं कि १–२ अपवादों को छोड़ कर नजरबन्द लोगों की संख्या में क्रमशः कमी होती गई है । मैं कुछ भरोसे के साथ इस क्रमशः कमी का कारण निवारक निरोध अधिनियम के उपबन्धों का सतर्क, बुद्धिमत्तापूर्ण और सोच समझकर किया गया उपयोग मानता हूं । और आशा है कि सदन इस बात में मुझसे सहमत होगा कि भारत में आज की विधि और व्यवस्था की स्थिति—मैं इन शब्दों को वापस लेता हूं—शांति और अक्षुब्धता की स्थिति निवारक निरोध अधिनियम के समझ बूझ कर किये गये उपयोग के ही कारण है । मैं आगे यह भी कहूंगा—बहुत संभव है कि सामने के कुछ सदस्य इस से सहमत न हों—मेरा सुझाव है कि यदि निवारक निरोध अधिनियम हमारी संविधि पुस्तक में विद्यमान न होता, तो फल अत्यंत घातक होते और परिस्थिति बिगड़ गई होती ।

प्रायः परमात्मा का भय लोगों को पाप करने से रोकता है, परन्तु अधिकांशतः मनुष्य के भय का अत्यंत निरोधक प्रभाव होता है और मैं समझता हूं कि भारत में आज ऐसे तत्व हैं, जो यथासंभव उपद्रव करना चाहते हैं । संविधान में से कुछ बातें पढ़ कर मैंने संविधान से स्पष्ट किये गये ऐसे लक्ष्यों की ओर सदन का ध्यान आकर्षित किया था, जिनके लिये निवारक निरोध की अनुमति है । केवल सार्वजनिक शांति ही अंतग्रस्त नहीं है । और भी बहुत सी बाते हैं, जैसे सारभूत पदार्थों की रसद का अक्षुण बना रहना । नियंत्रण और अब-नियंत्रण की इस नीति पर भारी मतभेद और विवाद रहा है । नियंत्रण का अर्थ है, बहुत सारा संयम और नियमित और आयोजित अर्थ व्यवस्था । अवनियंत्रण का अर्थ है खुली आजादी । उस में परिस्थिति न बिगड़ने देने के लिये तेज दृष्टि रखने की आवश्यकता रहती है, जिससे लोग अप-संग्रह न कर सकें, अनुचित लाभ न लूटें और पैसा बनाने में ही चाव लेने वाले लोग समाज विरोधी कार्यवाहियों में न लग जायें मैंने कल आंकड़े देकर बताया था कि अब समाज विरोधी कार्यवाहियों के कारण ९३ व्यक्ति नजरबन्द हैं । अब कई राज्यों में सावधानी और आंशिक अवनियंत्रण की यह नीति शुरू की गई है । अतः मेरे विचार से यह अत्यंत वांछनीय है कि ऐसी समाज विरोधी कार्यवाहियों का अंत कर देने के लिये तुरंत पग उठाने की पर्याप्त शक्ति राज्य सरकारों और यथावश्यक केन्द्र सरकार दोनों के ही हाथ में रहे । मैं

बिना परीक्षण नजरबन्दी न हो, इस बात को पीछे लूंगा । वस्तुतः अपने पिछले कार्यों के कारण मुझे इसमें विशेष रुचि है, पर उसकी कुछ सीमायें हैं । उसी प्रकार हमारे सामने संघीय सूची से ही संबंधित विषयों — बाहरी खतरा, भारत की सुरक्षा और दूसरी बहुत सी बातों – के बारे में भारी खतरे हैं, जैसा मैं ने कल बताया था । मैं इस विषय की विशेष गहराई में नहीं जाना चाहूंगा, पर सदन को आज की विश्व स्थिति विदित ही है । ठीक सामने बैठे हुए मेरे माननीय मित्र पश्चिमी बंगाल से आये हैं और बहुधा वहां की सीमा संबन्धी स्थिति की बात करते हैं ; वैसी ही देश के दूसरे भागों की दशाये हैं—जासूसी, शत्रु को समाचार देना आदि और भी बातें हैं । तो ऐसी सतर्कता अत्यंत अपेक्षित है । राज्य की सुरक्षा के भारी लाभ के लिये इन मामलों को इस अधिनियम के अधीन निपटाया जा सकता है । निश्चय ही इसमें कोई संदेह नहीं कि साम्यवादियों के पक्ष में भी काफी दृढ़ जनमत है । अब जहां तक इस मत का संबन्ध है, उससे हमारा कोई झगड़ा नहीं है । विधि विहित रीति से प्रत्येक व्यक्ति अपने विचार व्यक्त करने का अधिकारी है, पर कभी कभी वह विचार अत्यंत उत्तेजक रूप में व्यक्त किया जाता है ।

हमारी ३६ करोड़ जनता को अभी हाल ही में स्वाधीनता मिली है । साधारण चुनाव ने बता दिया है कि वह अत्यंत बुद्धिमान और नीति कुशल है ; उनका बुद्धिस्तर काफी ऊंचा है । पर कुछ विषयों विशेषतः धार्मिक विषयों में वे शीघ्र उत्तेजित हो जाते हैं और मैं कुछ अनिच्छा से कहूंगा कि कुछ दल उत्तेजना के उस तत्व का लाभ उठा रहे हैं या उठा सकते हैं । अब म एक उदाहरण दूंगा । उस समय कोई कार्य-वाही नहीं की गई पर चूंकि मैंने वह बात स्वयं देखी थी, इसीलिये उसे बता रहा हूं । चुनाव आंदोलन के समय मध्य भारत में बड़े बड़े पर्चे चिपकाये गये थे, जिन में गांधी टोपी पहने हुए व्यक्ति—कल्पित कांग्रेस वाले—हाथ में छुरा लिये सामने खड़ी हुई गायों की कसाई की भांति हत्या करते हुए दिखाए गए थे । वह पुलिस की सूचना नहीं है, इसे मैंने एक नहीं अनेक स्थानों पर स्वयं देखा था । मेरे कुछ साथियों ने मेरा ध्यान उनकी ओर आकर्षित किया । मैं स्वयं धार्मिक व्यक्ति हूं, अतः इन पर्चों का कुप्रभाव मेरे ऊपर न जमेगा । पर इन लोगों की मनोवृत्ति तो देखो । मेरे माननीय मित्र को ये बातें विदित नहीं हैं, फर दल के रूप में वह एक नहीं हजारों ऐसे पर्चे लगाने वाले उन लोगों से संबंधित हैं । और मैं अपने अनुभव के बल पर एक बात और बताऊं । पुलिस वृतांत और उनकी अविश्व-सनीयता के बारे में बहुत कुछ कहा जाता है । यह बात मेरे अपने विभाग के बारे में है । पुलिस जहां कुछ पैसा बना रही है वहां उसका वृतांत विश्वसनीय नहीं भी हो सकता है । जहां किसी ऐसे मामले की पड़ताल हो रही हो जिसमें कोई बेईमान पुलिस अफसर पैसा बनाना चाहता हो, तो झूठा वृतांत, झूठी पड़ताल आदि सब कुछ हो सकता है, पर व्यक्तिगत अनुभव और जांच के आधार पर मुझे पूरा भरोसा है कि जहां तक ऐसे राजनीतिक मामलों का संबंध है, साधारणतः पुलिस वृतांत विश्वसनीय ही होते हैं ।

डा० एस० पी० मुखर्जी : अद्‌भुत ।

डा० काटजू : साधारणतः विश्व-सनीय । उनकी बारंबार जांच की गई है । इस से पुलिसमैंन को क्या लाभ होगा ? कभी-कभी वह शीघ्रलिपि में वृतांत लिख लेता है और उनको भेज देता है । कभी-कभी वह वहां बैठकर पूरा पूरा विवरण ले लेता है । जैसे एक मामला लें । खेद है कि मेरे मित्र

[डा० काटजू]

यहां नहीं हैं, पर बताया जाता है कि उन्होंने कहा था, "इस काले कानून निवारक निरोध अधिनियम को ही लो। लोगों को बिना परीक्षण जेल में डाल दिया जाता है।" और आप को यकीन न होगा कि उन्होंने वहां एकत्र लोगों से यह भी कहा था, "उनको देखने के लिये जाने वालों को भी तुरन्त नजरबन्द कर लिया जाता है।" अब सोचिये, क्या ऐसा होता है ?

कुछ माननीय सदस्य : हां।

श्री एस० एस० मोरे (शोलापुर) : ये बातें १९४२ में हुई थीं।

अध्यक्ष महोदय : माननीय मंत्री से मेरा निवेदन है कि सदन से प्रश्न न पूछ वह तथ्यों का विवरण ही दें।

डा० काटजू : बहुत अच्छा श्रीमान्। मैं सभी को बता दूं कि मैं १९५२ में बोल रहा हूं और १९४२ या १९३९ में हुई किसी घटना का मुझ पर कुछ प्रभाव न पड़ेगा। न इस का ही मेरे ऊपर कोई प्रभाव पड़ेगा कि मेरे माननीय मित्र मेरी स्थिति की तुलना मैक्सवेल, टौटेनहम या मुझे अज्ञात किसी अन्य व्यक्ति से करें। न १९५०, १९४९ या १९५१ की किसी बात की याद दिलाना ही मुझ पर कोई प्रभाव डालेगा। हमें १८ जुलाई, १९५२ के इस महान दिवस की स्थिति से ही अपने आपको संबद्ध रखना होगा।

फिर साम्यवादी हैं। मैं प्रो० मुखर्जी द्वारा उस दिन कही गई इस बात का तत्काल स्वागत करता हूं यद्यपि उन्होंने न वह शब्द प्रयुक्त किया और न वह करेंगे ही कि वे हिंसा आदि को त्याग रहे हैं।

श्री एच० एन० मुखर्जी (कलकत्ता उत्तर-पूर्व) : श्रीमान्, स्पष्टीकरण के लिये। मैं ने हिंसा त्याग की बात कभी नहीं कही। गृह मंत्री द्वारा उसका निर्देश करने पर अवश्य मैंने एक औचित्य प्रश्न पर खड़े होकर वही चर्चा मुझे न करने देने संबन्धी बंधनों की बात कही थी। मैं सिद्ध कर सकता हूं कि आज की सरकार ही हिंसा अपना रही है।

प्रधान मंत्री तथा वैदेशिक कार्य मंत्री (श्री जवाहरलाल नेहरू) : श्रीमान्, क्या यह सदन का नियम है कि विवाद के सिलसिले में उससे असंबद्ध ये लंबे लंबे भाषण होने दिये जायें ? मेरी समझ से हम यह असाधारण प्रक्रिया अपना रहे हैं।

अध्यक्ष महोदय : शांति, शांति। दोनों ओर इस बात को लेकर तीव्र मतभेद है, पर मैं उस आवेश के प्रदर्शन की घोर निंदा करूंगा। अतएव मेरा सभी सदस्यों से निवेदन है कि विधेयक के बाहर का कोई निर्देश न करें। व्यक्तिगत स्पष्टीकरण की बात करते करते यदि कोई सदस्य दूसरे पर आरोप लगाने लगे, तो अध्यक्ष यह पहले से ही कैसे जान सकते हैं। हम यहां एक दूसरे के शत्रु नहीं। मतभेद भले हो, पर सभी ही देश का लाभ चाहते हैं। प्रजातंत्र की सर्वप्रथम अनिवार्य बात है कि हम में एक दूसरे की बात बिना बाधा डाले सुनने की सहनशक्ति हो। मैं दोनों ओर के सदस्यों से निवेदन करूंगा कि किसी माननीय सदस्य के बोलते समय बाधा न डालें। सभी सहमत नहीं हो सकते और न मौन रहने का अर्थ सहमत होना है। उस सब का उत्तर देने को अवकाश मिलेगा और उस समय आशा है दूसरी ओर के सदस्य धैर्य से उसे सुनेंगे। जब तक ऐसा न हो, हम देश के हित के लिये विधान नहीं बना सकते। आशा है हम दलबन्दी में न बह जायेंगे।

डा० काटजू : मैं तो प्रो० मुखर्जी का अत्यंत कृतज्ञ हूं क्योंकि मैं तो समझता था कि उनका उस दिन का वक्तव्य, जिसका मैंने भारी स्वागत किया था, हिंसा-त्याग पर आधारित था। रचनात्मक कार्यवाही की बात करते समय वह अपनी हिंसा-भक्ति पर दृढ़ न रहे थे और न उनके लिए यह आवश्यक रहा था कि उसे 'सरकार का काम' या 'परमात्मा का काम' बताएं। और क्या मैं कुछ ज्ञान के आधार पर सुझा सकता हूं कि भारतीय साम्यवादी दल जीवन भर एक ही बात में लगा रहा है, और तकलीफ उठा कर भी उस पर दृढ़ रहा है कि भारत में, कैसे भी सही, गड़बड़ी पैदा हो जाए, भले ही वे इस बात से मुझ पर नाराज़ हो जायेंगे।

और अनुभव के बल पर ही मैं फिर बताऊंगा कि जब मैं यू० पी० का उद्योग तथा श्रम मंत्री था, कानपुर में एक हड़ताल दो महीने चली थी। साम्यावादी दल में मेरे कई मित्र थे और मैं कुछ मतभेद कम करने का यत्न कर रहा था, तो एक बड़े नेता ने मुझ से कहा : "डा० काटजू, इससे क्या लाभ ? आप इसे निपटा देंगे, तो हम दूसरी करेंगे और आप दूसरी भी निपटा देंगे तो हम तीसरी करेंगे। हमारा लक्ष्य पूंजी और श्रम में शान्ति पैदा करना नहीं, बल्कि वर्ग-संघर्ष को प्रखर करना है।" श्रीमान्, मुझे एक ही अवसर याद है, जब साम्यवादी दल ने अधिकारियों के साथ सहयोग किया था, और वह १९४२ और १९४५ के बीच देश में शान्ति और व्यवस्था रखने के लिए किया था। १९२४ से १९५२ तक इन तीन वर्षों को छोड़ कर कभी भी उन्होंने शान्ति और व्यवस्था रखने में सहायता नहीं दी। मैं वह इतिहास न दुहराऊंगा, इसे कोश शिला कह लीजिए या स्वर्ण युग, कोई चिंता नहीं। पर हमें विदित है कि उन्होंने यही किया है और यही उनका दर्शन है।

उनकी दो समकालीन कार्यवाहियां होती हैं और प्रत्येक सच्चा साम्यवादी यह जानता है। एक 'वैध मोर्चा' रखो। यह संसद् 'वैध मोर्चा' है। एक 'अवैध मोर्चा' रखो, इसमें दूसरी कार्यवाहियां होती हैं। उस दिन मैं एक भद्र पुरुष का एक पत्र पढ़ रहा था। उस पत्र में उन्होंने लिखा था, "जब अमुक साथी यू० जी० है।" मैंने इस यू० जी० का अर्थ नहीं समझा। मने यूनेस्को और डब्ल्यू० एच० ओ० आदि तो सुने हैं, पर यू०-जी० कभी नहीं। कई बार पढ़ने पर मुझे सहसा ख्याल आया कि यह यू० जी० अंडर ग्राउंड (छिपे हुए) के लिए है। उन्होंने पत्र में लिखा था, "जब अमुक साथी यू० जी० हैं और कई वर्ष यू० जी० रह चुके हैं आदि।" आज भी बहुत से साथी यू० जी० हैं, और मेरे शब्द कोष में यू० जी० का अर्थ षड़यंत्रकारी है और उसे जेल में डाल देना चाहिए।

फिर मैं यहां पर विधि-विशारदों द्वारा उठाई गई इस बात की ओर आता हूं कि संसीदय सभाओं और प्रजातंत्रीय संस्थाओं वाले देश में बिना परीक्षण नजरबंदी नहीं होनी चाहिए। बहुधा विरोधी सदस्यों द्वारा श्री गोपालन के अभियोग के वृत्तांत का यह ग्रंथ मुझे प्रदर्शित किया जाता है। मैं बड़े आदर के साथ कहूंगा कि यह अत्यंत उत्कृष्ट है। इसमें एक ही निर्णय ३३४ पृष्ठों में है, और उच्चतम न्यायालय का निर्णय होने का कारण यह सर्वाधिक आदर का अधिकारी है। उस अभियोग के एक विमति-निर्णय में से एक-दो पंक्तियां पढ़ीं जा रही थीं कि प्रजातंत्रीय देशों में निवारक-निरोध अधिनियम एक अज्ञात वस्तु है। उसी ग्रंथ में दूसरे अंश इसके विरोध में हैं। पर इसके सिवा उन दो तीन पंक्तियों को

[डा० काटजू]

पढ़ते समय मुझे ध्यान आया कि वे कौन-कौन से देश हैं, जिनसे हमारे न्यायाधीश, अधिवक्तृ-परिषद् के सदस्य और अन्य नागरिक परिचित हैं। दो सौ वर्ष के संपर्क के कारण हम इंगलैंड से परिचित हैं और गत दस वर्षों से संयुक्त राज्य अमरीका से । इससे विरोधी दल के सदस्य समझेंगे कि दुनियां में दूसरे प्रजातंत्रीय राज्य हैं ही नहीं। अस्तु, मैं फ्रांस, इटली, और जर्मनी आदि की विधियों के संबंध में अपना अज्ञान स्वीकार करता हूं। उनके निर्णय उद्धृत नहीं किए जाते। हम उनकी भाषा नहीं जानते। हमारा समग्र वैध-प्रशासन इंगलैंड के आदर्श पर है, क्योंकि अंग्रेज हमारे शासक थे और प्रिवी कौन्सिल की न्याय-समिति ने हमारी विधि बनाई थी। वहां वस्तुतः बिना परीक्षण नजरबंदी नहीं होती और यह तर्क रखा जायगा कि केवल युद्ध-काल में ही बंदी-प्रत्यक्षीकरण को निलंबित कर दिया जाता है। मैं स्वयं घंटों उस तर्क को रख सकता हूं। पर कृपया उस प्रजातंत्र की मूलभूत स्थिति और वहां की परिस्थिति को याद रखें। मूलभूत स्थिति यह है कि छः सौ वर्ष से वहां के लोगों की आदत ही विधि का पालन करना बनी हुई है। और संसद् द्वारा कुछ भी विधि बना दी जाए, वे उसे पालेंगे। वे उसके विरोध में जनमत खड़ा कर उसके निरसन का प्रयत्न कर सकते हैं। पर एक बार विधि के पारित होने पर इसका पालन होता है। इसका कोई अर्थ नहीं कि यह पांच या तीन सौ सदस्यों के बहुमत से पारित हुई है। वह देश की विधि है। और उसके अधीन निकलने वाले आदेशों का भी पालन होता है।

मैं नहीं समझता कि यहां भी वैसी ही आदत है। मैं पूरे दिल से चाहता हूं कि वह यहां भी होती। यदि वह यहां होती तो आप कोई भी विधि पारित करते, चाहे निवारक निरोध अधिनियम होता या न होता, इसकी तो आवश्यकता ही नहीं रहती और यह तो निष्प्राण सा हो जाता। लोग खुले खुले कार्य करते और बुरी विधियों का उचित विरोध करते। पर यह स्वतः शासित देशों की बात है। विदेशी सरकार द्वारा शासित देशों में तो दूसरे उपाय अनुमति-योग्य माने जा सकते हैं। पर आत्म-शासित और वास्तविक प्रजातंत्रीय संस्थाओं वाले देशों में तो यह होगा ही।

उदाहरण के लिये गुण दोषों की बात बिना कहे मैं एक बात बता दूं। मान लो हमें अपनी कार्यवाही करने देने के लिये संसद् भवन के चौथाई मील के घेरे में भीड़ का निषेध करने वाला एक आदेश धारा १४४ के अन्तर्गत निकाल दिया जाता है। आप औचित्य प्रश्न उठायगे कि वह आदेश कदापि नहीं निकालना चाहिये था और अब इसे वापस ले लिया जाय। मैं मानता हूं कि आप इस कारण सरकार के विरुद्ध निंदा-प्रस्ताव भी सामने ला सकते हैं। पर जब तक आदेश चल रहा है, स्थिति क्या है ? आप को क्या आशा है ? क्या आप चाहते हैं कि लोग उस का पालन न करें ? मान लो कि दिल्ली में—कहीं भी सही—प्रभावशाली व्यक्ति लोगों को उस आदेश का उल्लंघन करने के लिए और हजारों की संख्या में आगे बढ़ कर उसे तोड़ने के लिये उकसाते हैं। सवेरे के हिन्दुस्तान स्टैंडर्ड के अन्तिम पृष्ठ का चित्र देखने से आप को पता चल जाएगा कि क्या होता है। मैं ने इसे स्वयं देखा है कि पुलिस घेरा बना कर इस विशिष्ट आदेश का पालन करवाने के लिए प्रयत्न कर रही है। वह कुछ कर नहीं रही, बल्कि खड़ी ही है। पर आप दूसरे लोगों के चेहरे देखते हैं, आवेश के मारे उन की आंखें निकली पड़

रही हैं। वे पुलिस पर टूट पड़ना चाहते हैं। स्वभावतः ही इस का फल होता है। अश्रु गैस प्रयुक्त होती है और हमें प्रजातंत्रीय रूढ़ियों और आपत्तियों के उद्धरण सुन ने को मिलते हैं। मेरा आप से सुझाव है कि यदि सरकार संतुष्ट है यदि (समाचार पत्रों में पहुंच के कारण) आप संतुष्ट हैं कि तीन चार व्यक्ति अपने दलों के हित के लिए लोगों को उकसा रहे हैं, तो आप क्या करेंगे ? याद रहे कि धारा १४४ के उस आदेश में राजनीति रंचमात्र भी अन्तर्ग्रस्त नहीं है। केवल उस आदेश की अवहेलना करने और सरकार की निन्दा कराने के ही लिये और सार्वजनिक शान्ति नष्ट करने के ही लिये लोगों को उकसाया जाता है। क्या आप नहीं समझते कि ऐसी स्थिति में निवारक निरोध के अन्तर्गत कार्यवाही न्यायोचित है ?

एक माननीय सदस्य : निश्चय ही।

कुछ माननीय सदस्य : नहीं, नहीं।

डा० काटजू : मतभेद हो सकता है, मैं केवल अपना मत व्यक्त कर रहा हूं। स्वयं दिल्ली में ही लगभग दो महीने पहले भारी अव्यवस्था की सम्भावना थी। तो इस अधिनियम के अधीन दो-चार-दस आदमियों के विरुद्ध कुछ दिनों के लिये कुछ कायवाही करना अधिक श्रेयष्कर है या भीषण उपद्रवों द्वारा करोड़ों निरीह व्यक्तियों को हानि पहुंचने देना ? फिर कलकत्ते में ट्रामें जलाई गईं, बम फेंके गये और निरीह लोगों और पुलिस को चोटें पहुंचाई गईं। अब क्या अधिक अच्छा है, 'बिना परीक्षण जेल न हो' का नारा या शांति रखने और उपद्रव रोकने के लिये ऐसी विवेकपूर्ण कार्यवाही ? मैं बारम्बार कहता हूं कि राजनीतिक मत के प्रकाशन को रोकने या कम करने का कोई प्रश्न नहीं है।

इंगलैंड में संसद् सर्वोच्च है। वहां की जनसंख्या कुल ४ करोड़ है। वहां जाने वाले आप हम सभी जानते हैं कि भले ही सार्वजनिक स्थानों में बड़ी बड़ी बातें की जायें पर जनसाधारण विधि का पालन करते हैं। अमेरीका में तो लिखित संविधान में निश्चित उपबन्ध है कि विधि की प्रणाली के बिना कुछ न हो और वे विधि के अनुसार चलते हैं।

यहां संविधान काफी विवाद के बाद बना था। मेरी समझ से डा० मुखर्जी संविधान बनते समय सरकार के सदस्य थे। उचित विचार के बाद संविधान सभा सहमत हो गई कि निवारक-निरोध के लिये संविधान में उपबन्ध रखा जाये। उस में कोई शर्तें नहीं रखी गई।

संविधान निर्माताओं ने विद्यमान स्थिति को समझ लिया। उन्हों ने यह देख लिया कि हम अभी तत्काल स्वतंत्र हो रहे हैं, सैकड़ों शरणार्थी इधर उधर फैले हुए हैं और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में बड़ा विषम युग चल रहा है। आंतरिक स्थिति भी निश्चिन्त नहीं बना सकती थी, अतः उन्हों ने सूची में वह मद् रखी और अनुच्छेद २२ रखा गया। तो मेरा सुझाव है कि इस से प्रकट है कि संविधान ने मान लिया था कि आज ऐसी स्थिति है और कल ऐसी परिस्थितियां खड़ी हो सकती हैं जब ऐसी विधियां पारित करनी पड़ें। इस विधेयक का घोर विरोध करने वाले व्यक्तियों को मैं सुझाऊंगा कि उचित उपाय संविधान को संशोधित करना होगा अधिनियम को नहीं। संविधान में ही उन के दृष्टिकोण से ग़लती है। संघीय सूची और समनुवर्ती सूची में से वह मद् ही उन को निकलवानी चाहिये। पर यदि संविधान इस की अनुमति देता है, तो मेरी समझ से संविधान में ही यह माना गया है कि आज देश में निवारक-निरोध को आवश्यक ठहराने वाली दशायें विद्यमान हैं और यदि दशायें विद्यमान हैं, तो संसद् सर्वोच्च है, तो उसे विधान बनाना ही होगा।

मुझे विरोधी दल के समाक्षेपों पर अचंभा ही होता है। साम्यवादियों का विरोध समझा

[डा० काटजू]

जा सकता है, क्योंकि अधिनियम न होने पर उन को अधिकाधिक अवसर मिलेगा। मैं संप्रदाय वादियों का विरोध भी समझता हूं, क्योंकि अधिनियम न होने पर गोहत्या या व्याख्यानों के लिये अपेक्षतया अधिक अवसर मिलेगा। पर भूतपूर्व शासकों की बात समझ में नहीं आती। श्रीमान्, २५ जून को गृह मंत्री के अनुदानों में पूर्वी भारत के एक माननीय मित्र का १०० रुपये का एक कटौती प्रस्ताव आप के द्वारा मतदान के लिये रखा गया था जिस का उद्देश्य नागरिक स्वाधीनता पर विचार करना था। सौभाग्य या दुर्भाग्य से मैं भी एक देशी राज्य में पला हूं। मैं ने ध्यान से देखा और मुझे याद आया कि उस राज्य में १९४८ में न कोई सभा हो सकती थी और न कोई समाचार पत्र निकल सकता था। निश्चय ही यह आश्चर्य का युग है पर सब से बड़ा आश्चर्य यह क्रांतिकारी परिवर्तन है कि कल जिन राज्यों में कुछ नहीं हो सकता था, आज वहां के शासक संसद् में खड़े हो कर कहते हैं कि नागरिक स्वाधीनता की हत्या हो रही हैं। (**अन्तर्बाधाये**) मैं एकरूपता का नाम न लूंगा क्योंकि वह बहुत वांछनीय गुण नहीं है, पर इस में कुछ अनुपात वृद्धि तो होनी ही चाहिये। फिर इस नारे का साथ देने वाले पूंजीपति या निहित स्वार्थों का प्रतिनिधित्व करने वाले लोग थे। यहां नागरिक स्वाधीनता के लिये मरने-मिटने के लिये साम्यवादी, संप्रदायवादी, पूंजीपति, भूतपूर्व शासक और तथाकथित स्वतंत्र व्यक्ति सभी मिल जुल गये हैं।

श्री वीरस्वामी उठे--

अध्यक्ष महोदय : शान्ति, शान्ति :

कई माननीय सदस्य उठे--

अध्यक्ष महोदय : अध्यक्ष के खड़े होने पर किसी को खड़ा न रहना चाहिये। बोलने वाले सदस्य को बोलने का अधिकार है, और उस पर धारावाहिक टिप्पणियां न चलनी चाहियें। यह संसदीय विवाद चलाने की प्रक्रिया नहीं है। मैं चाहूंगा कि बाधा डालने वाले सदस्य अनुपस्थित रहें।

श्री एस० एस० मोरे : श्रीमान्, मैं पूछ सकता हूं ...

अध्यक्ष महोदय : कोई प्रश्न नहीं। श्री मोरे की आदत ही प्रश्न उठाने की है। प्रासंगिक अन्तर्बाधा या व्यक्तिगत स्पष्टीकरण की बात अलग है पर अंधाधुंध बाधा डाल किसी को बोलने न देना भारतीय संसद् का व्यवहार नहीं है।

श्री एस० एस० मोरे : मेरा इससे मतभेद है।

अध्यक्ष महोदय : तब अच्छा हो आप तुरन्त सदन छोड़ कर चले जायें। मैं किसी को बाहर जाने का आदेश नहीं दे रहा, पर जो भी बाधा डालेगा उसे बाहर जाना होगा। (**अन्तर्बाधायें**)।

श्री वीरस्वामी उठे --

अध्यक्ष महोदय : यदि अध्यक्ष के खड़े होने पर श्री वीरस्वामी उठेंगे तो उन को भी जाना होगा।

श्री नम्बियार : तो आप एक एक कर भेज रहे हैं।

अध्यक्ष महोदय : नहीं। मैं चाहता हूं कि एक समय पर एक ही व्यक्ति बोले और अन्तर्बाधायें न डाली जाएं। जो यह करना चाहते हैं वे बाहर ही रहें।

श्री एच० एन० मुखर्जी : मेरा निवेदन है कि इस विषय पर क्रोधावेश बढ़ गया है और उत्तेजना उस ओर से मिली थी। (**अंतर्बाधाये**) यदि आप का निर्णय दोनों ओर लागू हो, तभी यह ठीक समझा जा सकेगा।

अध्यक्ष महोदय : मेरा निर्णय दोनों ओर – मंत्रियों तक पर समान रूप से लागू होता है पर बारम्बार बाधा डालने वाले श्री नंबियार, श्री वीरस्वामी और श्री मोरे की बात मेरी समझ में नहीं आती ऐसे संयम न रख सकने वाले व्यक्तियों के लिये संसद् उपयुक्त स्थान नहीं है और उनको बाहर ही रहना चाहिये। मेरे द्वारा शान्ति शान्ति कहने पर भी यह लोग अंतर्बाधा डालते रहे, तो विवाद चल ही नहीं सकता।

श्री एच० एन० मुखर्जी : सदन से जाते समय एक विरोधी समूह के नेता श्री मोरे को आप का यह ताज़ा निर्णय विदित न था कि आप दोनों ओर के लोगों पर इसे लागू करेंगे। आशा है आप मुझे उन तक यह संदेश पहुंचाने देंगे, क्योंकि उन के बाहर रहने पर हमारे लिये भावना को दबा सकना कठिन होगा।

अध्यक्ष महोदय : शांति, शांति। पहले तो मुझे इस सुझाव का खंडन करना है कि मैं एक ओर वालों को खुली छूट देना चाहता था। माननीय मंत्री के भाषण में तब से बाधा डाली जा रही है और श्री मोरे ने तो मेरे द्वारा इसे 'भारतीय संसद् का व्यवहार नहीं' बताने पर भी वही करने की बात कही थी।

कई माननीय सदस्य : नहीं, उन्होंने यह नहीं कहा।

अध्यक्ष महोदय : लो अब प्रत्यक्ष हो गया। इन 'नहीं' कहने वाले लोगों ने भावावेश में न सुना होगा पर मैंने जाने या ठहरने का विकल्प श्री मोरे के ही ऊपर यह कह कर डाल दिया था कि यहां रहने पर तो उनको यहां के व्यवहार का पालन करना होगा। अस्तु, यदि श्री मोरे किसी दल या समूह के नेता हैं, भले ही उसे मान्यता न मिली हो, तो उनका आचरण और भी उत्तरदायित्वपूर्ण होना चाहिये था। उन तक मेरी बात पहुंचाई जा सकती है, पर ऐसी बात नहीं कि मैं ने पहले कुछ निर्णय दिया था और श्री मुखर्जी के निवेदन पर मैं बिल्कुल निष्पक्ष हो गया। वह आएं तो उनका स्वागत है, पर अध्यक्ष की कृपालुता या सहृदयता से इतना लाभ नहीं उठाने दिया जा सकता कि संसदीय कार्यवाही असंभव हो जाये। सूचना प्राप्त करने के लिये वह एक आध बात पूछ सकते हैं और मैं अनुमति देता रहा हूं, पर जब तक मैं अध्यक्ष पद पर हूं, मैं वह न होने दूंगा।

श्री एच० एन० मुखर्जी : आप वातावरण को शान्त करने के लिये स्वयं कुछ सहायता देंगे।

अध्यक्ष महोदय : दुर्भाग्य से सरकारी सदस्यों की अपेक्षा विरोधी सदस्यों द्वारा ही मेरी वह बात अधिकतर सुनी नहीं जाती। मैं दोनों ओर वालों से कह रहा हूं कि सीमा से बाहर न जायें। वस्तुतः लगभग आधे दर्जन विरोधी सदस्यों द्वारा ही खड़े हो कर बाधायें डाली गईं, इस ओर वालों ने तो मिल कर 'हां' या 'न' के सिवा और कुछ नहीं कहा। अतः मुझ से अनुरोध करने के स्थान पर वह स्वयं अपनी बात सोचें। मैं सदा उन के अधिकारों की रक्षा के लिये उद्यत हू।

श्री एच० एन० मुखर्जी : यदि आप के मत से दूसरी ओर की अपेक्षा सारी गड़बड़ विरोधियों और साम्यवादियों ने की है, तो हम साम्यवादियों को सदन छोड़ना होगा।

अध्यक्ष महोदय : मेरा अभिप्राय उस दल के ४-५ सदस्यों से था। विशेषतः श्री नम्बियार के वर्तमान व्यवहार ने यह स्पष्ट कर दिया है .. .. ..

श्री नम्बियार : मेरा नाम बार बार लेना अनुचित है ।

अध्यक्ष महोदय : माननीय सदस्य को यह आरोप वापस लेना होगा, नहीं तो सदन छोड़ना होगा ।

श्री नम्बियार : मैं नहीं जाऊंगा । आप पुलिस बुलाइये । मैं श्री मोरे नहीं हूं । (पास आए हुए मार्शल से) आप मुझे बाहर ढकेल दें ।

अध्यक्ष महोदय : या वह आरोप वापस लें, या चले जायें ।

श्री एच० एन० मुखर्जी : हमारे समझाने पर भी उन्होंने वह वापस नहीं लिया । मैं नहीं चाहता कि उन्हें सदन में बैठने की अनुमति दी जाये और न मैं इससे संबद्ध हूं । पर सदन में आवेश बढ़ जाने और श्री नम्बियार और श्री मोरे के बाहर रहते हुए हम अभी सदन में ठहर न सकेंगे । आशा है, इस में ग़लतफ़हमी न होगी ।

अध्यक्ष महोदय : बात सीधी है । श्री मोरे के विषय में तो बाहर जाना या ठहरना मैंने उन के ही ऊपर डाल दिया था और श्री नम्बियार जब तक वह शब्द वापस न लेंगे मैं उन्हें सदन में बैठने की अनुमति नहीं दे सकता । साधारणतः विरोधी दल के सदन त्याग पर मुझे खेद होगा और मैं चेतावनी दूंगा कि यह उस प्रकार के व्यवहार को प्रोत्साहन देना भर होगा । उचित रास्ता यही होगा कि श्री नम्बियार को आरोप वापस लेने और श्री मोरे को आकर शांतिपूर्वक बैठने के लिये समझाया जाये . . . .

श्री मेघनाद साहा (कलकत्ता उत्तर-पश्चिम) : थोड़ी देर के लिये सदन स्थागित कर दिया जाय ।

अध्यक्ष महोदय : अभी डा० लंका सुंदरम् ने भी यही सुझाव दिया था, पर यह सदन की प्रतिष्ठा और अनुशासन का प्रश्न है । क्या अध्यक्ष से यह आशा की जाती है कि वह यह आरोप सहन कर लें । श्री मुखर्जी द्वारा चाहे गये "वातावरण" के लिये भी मैं झुक नहीं सकता । आशा है, माननीय सदस्य जाकर उनको समझायेंगे । श्री मोरे कोई बचन न भी दें, पर श्री नम्बियार को तो वह आरोप वापस लेना ही होगा ।

श्री जवाहरलाल नेहरू : मुझे खेद है, मैं बाधा नहीं डालना चाहता हूं, पर यह सदन के उस ओर का ही वार्तालाप बना जा रहा है और श्रीमान् आप और हम पिछले कुछ मिनट में घटने वाली बातों को शान्ति से देखते रहे हैं । एक दल के नेता नहीं बल्कि सदन के नेता के रूप में मैं कुछ सदस्यों द्वारा आपके प्रति और सदन की प्रतिष्ठा के प्रति किये गये दुर्व्यवहार के लिये भारी खेद प्रकट करता हूं और उसी नाते मैं सभी ही सदस्यों से अनुरोध करता हूं कि इस सदन में सबसे पहला कार्य अध्यक्ष की आज्ञा का पालन है । अन्यथा कोई व्यवस्था न रहेगी और हमारे लिये काम करना असंभव हो जायेगा । संभव है कि कोई व्यक्ति कभी समझ ले कि आपने भी कोई ग़लती कर दी है, फिर भी किसी सदस्य के लिये आप के निर्णय को चुनौती देना या उसे ग़लत सही ठहराना संभव नहीं होना चाहिये । मूल आधार यही है । पूरे सदन की ओर से बोलते हुए मुझे अभी हुए प्रदर्शनों के विरुद्ध खेद प्रकाश करना है ।

मैं ऐसी कोई बात नहीं कहना चाहता जो भावावेश को बढ़ा दे । पर श्रीमान्, मैं आप का और सदन का ध्यान एक बात की ओर अवश्य आकर्षित करना चाहता हूं, जिसकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया । आप ने तो उदारतापूर्वक यहां तक कह दिया कि यदि माननीय सदस्य अपना आरोप वापस ले लें, तो आकर बैठ सकते हैं, पर शब्दों और चेष्टाओं द्वारा अध्यक्ष की प्रकट

अवहेलना मेरी समझ से सहज क्षम्य नहीं है।

अभी मुझे यह विदित नहीं कि इस विषय में सदन के नियम क्या हैं और यह सदन की किसी समिति, विशेषाधिकार समिति आदि का कार्य है। मेरा निवेदन है कि हम इस बात को आगे न बढ़ायें, बल्कि श्री नम्बियार द्वारा शब्दों और चेष्टाओं द्वारा व्यक्त किये गये आचरण के इस मामले को जांच और प्रतिवेदन के लिये एक समिति को सौंपा जाय। मैं तत्काल एक प्रस्ताव रख कर सदन के कार्यक्रम में बाधा डालने के लिये उद्यत नहीं हूं पर मैं चाहता हूं कि इस पर यथायोग्य गंभीरता के साथ विचार किया जाय। मुझे कुछ माननीय सदस्यों के इस सुझाव पर विस्मय होता है कि एक सदस्य के दोष पर सदन को स्थगित कर दिया जाए। इसका अर्थ तो यह होगा कि यदि एकमात्र सदस्य सदन के कार्यक्रम को समाप्त कर सकता है, तो हम कभी भी कुछ काम न कर सकेंगे। फिर न केवल यह वचन और चेष्टा द्वारा आपका अपमान है — और आपका अपमान ही सदन का अपमान है— बल्कि आपके आदेश पर भी जान बूझ कर बाहर जाने से इनकार कर देना तो मुझे अचंभे में ही डाल देता है। मैं तत्काल उनके मुअत्तिल किये जाने का प्रस्ताव कर सकता हूं, पर करूंगा नहीं। मैं इस विषय में आप का परामर्श चाहूंगा, क्योंकि मैं नहीं चाहता कि यह सदन कठोर पग उठाये। पर मुझे कोई संदेह नहीं कि यदि आगे कभी कोई सदस्य इस आचरण को दुहराये तो उसे इस सदन द्वारा निश्चित किये गए काल तक के लिये मुअत्तिल कर दिया जाये।

अध्यक्ष महोदय : मैं स्थिति स्पष्ट कर चुका हूं और आगे बात नहीं बढ़ाना चाहता। श्री नम्बियार सदन में उपस्थिति हैं, क्या वह अपने शब्द वापस लेने को तैयार हैं ?

श्री नम्बियार : उससे तो यही अच्छा होगा कि मैं बाहर चला जाऊं।

(श्री नम्बियार सदन को छोड़कर चले गये।)

अध्यक्ष महोदय : इस सम्बन्ध में मैं माननीय सदस्यों का ध्यान नियम २६८ की ओर दिलाऊंगा, जिसमें कहा गया है कि यदि कोई सदस्य सदन की कार्यवाही में जान बूझ कर बाधा डाले और अध्यक्ष की अवज्ञा करे, तो अध्यक्ष उस सदस्य का नाम लेकर सत्र की शेष अवधि तक के लिये उसे मुअत्तिल करने का प्रस्ताव रख सकता है, परन्तु सदन कभी भी एक प्रस्ताव द्वारा मअत्तिली को समाप्त कर सकता है।

सदन में सद्भावना का वातावरण बनाये रखने के लिये और यह समझते हुए कि श्री नम्बियार क्रोधावेश में बह गये हैं, मैं अधिक गंभीर कार्यवाही न करूंगा। बस इतना तो मैं चाहूंगा ही कि यदि वे अध्यक्ष के प्रति 'अनुचित' होने वाला आरोप वापस न लें, वह आज सदन में उपस्थित नहीं होंगे।

श्री राघवय्या (ओंगोल) : श्रीमान्, सूचना के लिये .....

अध्यक्ष महोदय : शान्ति, शान्ति। सूचना मेरे कक्ष में मुझसे प्राप्त कर ली जाए। माननीय गृह मंत्री भाषण जारी रखें।

डा० काटजू : अध्यक्ष महोदय, अब मैं इस विधेयक में अधिनियम के ऊपर किये गये सुधारों की बात करूंगा, जिससे उपस्थित सदस्यों के ऊपर शांतिकारी प्रभाव पड़ेगा।

सदन को विदित होगा कि दो वर्ष से निवारक-निरोध अधिनियम की अवधि १२ महीने की रखने का व्यवहार चला आ रहा था,

(डा० काटजू)

फलतः अधिनियम के पुनर्नवीकृत न होने पर १२ महीने के बाद सभी निरोध स्वतः समाप्त हो जाते थे। कई दृष्टियों से हमें यह व्यवहार अत्यंत असंतोषप्रद प्रतीत होता था। पहले तो जैसा मैंने बतलाया, संविधि पुस्तक में ऐसे अधिनियम के रहने की हमें भारी आवश्यकता प्रतीत हो रही है। दूसरे प्रत्येक बारह महीने बाद इस विधेयक को सामने लाने में व्यर्थ समय नष्ट होता है। आज सदन ने यह देख लिया और यह भी समझ लिया कि सदन का समय अत्यंत बहुमूल्य है अतः इस विधेयक में यह उपबन्ध रखा गया है कि यह ३१ दिसम्बर, १९५४ तक लागू रहेगा। क्रम-पत्र में मुझे दोनों ही ओर के संशोधन दिखाई देते हैं। कुछ लोग अवधि बढ़ाने की बात कह रहे हैं और उसके लिये भी बहुत तर्क दिये जा सकते हैं। कुछ अवधि कम करने की बात करते हैं, इससे विधेयक के बहुत से उपबन्ध निरर्थक हो जायेंगे, क्योंकि पहली ही बार स्वयं विधेयक में यह कहा गया है कि परामर्शदाता बोर्ड द्वारा आदेश के पक्के होने की स्थिति से ले कर १२ महीने के समय से अधिक कोई भी नज़रबंदी न चल सकेगी। अधिनियम संविधि पुस्तक में वर्षों तक—जब तक संसद् चाहे—बना रहे, पर किसी व्यक्ति की नज़रबन्दी आदेश के पक्के होने की स्थिति से लेकर १२ महीने के समय से अधिक न चल सकेगी और आदेश तीन महीने से भी कहीं पहले पक्का कर दिया जायगा।

दूसरी सुविधा हमने अभ्यावेदन के अधिकार के बारे में दी है। सदन को पुराने अधिनियम का यह उपबन्ध याद होगा कि नज़रबन्द व्यक्ति को नज़रबंदी के कारण बताये जाने के बाद वह अपनी रक्षा के लिये लिखित उत्तर दे सकेगा, जिस पर परामर्शदाता बोर्ड विचार करेगा और उचित समझेगा तो उसे अपने सामने बुला भी लेगा। यह उसके स्वविवेकानुकूल निर्णय के ऊपर छोड़ दिया गया था। अब इस विधेयक में यह उपबन्ध है कि यदि वह व्यक्ति चाहे तो वैसी इच्छा प्रकट कर सकता है, और ऐसा करने पर उसे ऐसा अवसर दिया जायगा। प्रायः यह कहा जाता था कि व्यक्तिगत अभ्यावेदन अधिक अच्छा रहेगा और अधिक प्रभाव डालेगा, और अब उस इच्छा को कार्यान्वित किया गया है।

मेरा अनुमान है कि यह कहा जायेगा कि अभ्यावेदन या व्यक्तिगत उपस्थिति ही पर्याप्त नहीं है, वकीलों, प्रतिपरीक्षण (जिरह) की आज़ादी और साक्षियों को बुलाये जाने आदि का भी उपबन्ध होना चाहिये। ऐसे कुछ संशोधन रखे गये हैं। श्रीमान्, मेरा निवेदन है कि विधेयक के लक्ष्य और इसके अभिप्रेत उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए वकीलों और साक्षियों की उपस्थिति उपयुक्त न होगी। अत्यंत गोपनीय मामले हो सकते हैं, और इस कारण प्रचार राज्य के हित के लिये अत्यंत हानिकारक हो सकता है। जैसा मैंने कहा, मैं वैध तर्कों में नहीं पड़ना चाहता, पर श्री गोपालन के अभियोग के निर्णय में से उद्धरण देने के लिये उत्सुक माननीय सदस्यों को उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश द्वारा प्रतिवेदन के पृष्ठ २४ पर कही गई निम्न बात ध्यान में रखनी चाहिये :

"मैं यह तर्क मानने को तैयार नहीं कि प्राकृतिक न्याय के नियमों के अनुसार भी वकील के द्वारा सुने जाने का अधिकार प्रक्रिया के अधिकार का एक अत्यावश्यक अंग है।"

और फिर वह कहते हैं कि यदि नज़रबन्द को प्राकृतिक न्याय के अनुसार ही यह अधिकार

नहीं मिला, तो वकीलों के द्वारा होकर किये गये अभ्यावेदन की तो बात ही क्या है। मैं इन न्यायिक विचारों पर ही निर्भर नहीं हूं। यह सार्वजनिक नीति का विषय है और सरकार उस में पड़ने के लिए तैयार नहीं है।

दूसरे आप को यह देख कर हर्ष होगा कि आदेश केंद्रीय सरकार और राज्य सरकारों द्वारा निकाला जा सकता है– बल्कि अधिनियम यह अधिकार देता है कि आदेश उच्च पदवी वाले अधिकारियों द्वारा निकाला जाए। भारत में ज़िला मजिस्ट्रेट बड़े ही ज्येष्ट अधिकारी हैं और वैसे ही कलकत्ता में पुलिस का आयुक्त। पिछले अधिनियम में बताया गया था कि आदेश निकालने के बाद ज़िला मजिस्ट्रेट राज्य सरकार के पास सूचना भेज सकता है। नया अधिनियम १५ दिन के भीतर ही सविवरण सूचना भेजना उसके लिए अनिवार्य कर देता है और सरकार इस पर ध्यान दे सके और औपचारिक रूप से स्वयं उस आदेश के लिए उत्तरदायी हो सके, इसके लिए इस विधेयक में उपबंध किया गया है कि सरकार नज़रबंदी के १५ दिन के भीतर ही उसे स्वीकृत कर ले या पक्का कर दे। इस पर कुछ संशोधन रखे गए हैं और एक म संभवतः अंग्रेज़ी प्रक्रिया के अनुसार यह कहा गया है कि गृह मंत्री यह काम करे। मैं गृह मंत्री से संबद्ध गुणों को वस्तुतः नहीं जानता, पर यदि राज्य सरकार की बात है, तो सभी राज्य सरकारों के सभी कार्य प्रभारी उत्तरदायी मंत्री द्वारा ही किए जाएंगे, उसका नाम कुछ भी हो। यह बात मंत्रिपरिषद् या मुख्य मंत्री के पास तक जा सकती है, अतः मेरी समझ से इस बात का कुछ महत्व नहीं है। यही बातें मैं सदन के सामने रखना चाहता हूं।

एक खंड में स्पष्ट उपबंध है कि एक बार छूटने के बाद उसी आधार पर उसे दुबारा नज़रबंद न किया जाएगा। दुबारा नज़रबंदी तभी हो सकेगी, जब वह कुछ दूसरा काम करे।

अंत में मैं एक बात पर और ज़ोर दूंगा, क्योंकि उसके बारे में ग़लतफहमी मालूम पड़ती है। नज़रबंदियों के इन मामलों में प्रारंभिक उत्तरदायित्व राज्य सरकारों का है। यह सच है कि अधिनियम की एक विशेष धारा में केंद्रीय सरकार को छोड़ने का आदेश देने का अधिकार दिया गया है, पर यह बोझ राज्य सरकारों को ही उठाना चाहिए, और अपनी संविहित शक्ति का प्रयोग करते समय केंद्रीय सरकार वस्तुतः उनके अभिमत को महत्व देगी।

पिछली संसद् में विधेयक की अवधि ६ महीने के लिए बढ़ाते समय मैंने वचन दिया था कि पुराने अधिनियम को कार्ययोग्य बनाने और उचित तकलीफों को दूर करने के लिए सरकार उसमें यथासंभव संशोधन करेगी मैंने उस वचन का पालन किया है और सदन में प्रस्तुत किया गया यह विधेयक अपेक्षतया बहुत ही सरल है और अवैध कार्यवाहियों में रुचि न रखने वाले और उचित राजनीतिक काम में संलग्न, अपने राजनीतिक विचारों का प्रसार करने वाले और मतदाताओं को शिक्षित बनाने में लगे हुए किसी भी व्यक्ति को इससे डरने का कोई कारण नहीं है। इस सीमा से बाहर जाने पर ही विधेयक या अधिनियम उस पर लागू होगा।

बैठने से पहले मैं एक बात और कहूंगा। दंड-संहिता में विभिन्न अपराधों की परिभाषाएं बताई गई हैं। अंत में बताया गया है कि अपराध के लिए किया गया यत्न भी दंडनीय है। नियम कहते हैं कि तैयारियां दंडनीय

[डा० काटजू]

नहीं हैं। न्यायालयों में इस बात को लेकर भारी विवाद है कि तैयारी की सीमा कहां पर समाप्त होती है और कहां पर यत्न की सीमा आ जाती है। मेरा सुझाव है कि विभेद बहुत ही सूक्ष्म हो सकता है, पर यदि राज्य के विषय में आप तैयारियां करने दें, तो राज्य के लिए खतरा अपेक्षतया इतना अधिक हो जाता है कि मानो यत्न ही किया गया हो। निवारक-निरोध अधिनियम का लक्ष्य सारांशतः यही है कि किसी व्यक्ति द्वारा की गई तैयारियां इस सीमा तक न पहुंच जाएं कि राज्य को भयानक हानि पहुंचे या उसकी सुरक्षा ही खतरे में पड़ जाए या अत्यावश्यक संभरण या सार्वजनिक व्यवस्था ही खतरे में पड़ जाए।

अध्यक्ष महोदय प्रस्ताव प्रस्तुत हुआ :

> "निवारक निरोध अधिनियम, १९५० को फिर संशोधित करने के लिए एक विधेयक को विचारार्थ ग्रहण किया जाए।"

श्री एच० एन० मुखर्जी : श्रीमान्, आप आगे कोई कार्य लें, इसके पूर्व साम्यवादी सदस्यों की ओर से, जिनमें से अधिकांश उठ कर जा चुके हैं, मुझे एक वक्तव्य देना है। मैं किसी को दोष नहीं देता, पर आज सवेरे की घटनाओं से और विशेषतः श्री नम्बियार की देह पर हाथ लगाए जाने से वातावरण अत्यंत विक्षुब्ध हो गया है और हम लोग इस गंभीर विषय में पूरा पूरा मन नहीं लगा सकते। मैं अध्यक्ष को कोई दोष नहीं देता, पर घटनाओं के कारण हमारी भावनाओं को काफ़ी ठेस पहुंची है और आशा है कि ऐसी स्थिति में आप हमें सदन से जाने की आज्ञा दे देंगे।

अध्यक्ष महोदय : अच्छा।

डा० एस० पी० मुखर्जी : श्रीमान्, विधेयक के क्षेत्र और सिद्धांतों से संबंधित एक औचित्य प्रश्न पर, मैं इस संबंध में एक स्पष्टीकरण चाहूंगा, जिससे हम विधेयक के प्रति अपना रवैया निश्चित कर सकें।

[**उपाध्यक्ष महोदय** अध्यक्ष-पद पर आसीन थे]

पहले तो विधेयक का रूप ही व्यवस्थित नहीं है, फिर यदि यह व्यवस्थित है तो इसके रूप, विषय के महत्व और सरकार के आश्वासनों की दृष्टि में हमें मूल अधिनियम और इस विधेयक, दोनों पर विचार करने और दोनों में संशोधन रखने का अधिकार होना चाहिए।

एक तो यह विधेयक अधिनियम की अवधि ३१ दिसम्बर, १९५४ तक बढ़ा रहा है और दूसरे मूल अधिनियम की १६ धाराओं में से ५ धाराओं को संशोधित कर रहा है तथा एक नई धारा निविष्ट कर रहा है। अतः एक पूर्णतः नया विधेयक सामने न ला कर सरकार इस विधेयक द्वारा दोनों ही काम करना चाहती है।

फिर २८ फ़रवरी १९५२ को इन्हीं गृह मंत्री ने अधिनियम को अक्टूबर १९५२ तक बढ़ाते समय यह वचन दिया था कि चूंकि नई संसद् द्वारा अन्य अधिनियमों के साथ-साथ निवारक-निरोध की पूरी नीति पर भी विचार होगा, इस प्रथम संशोधन विधेयक से विशेष क्षति न होगी और तब सदन को अपने विचार बदल देने और इसे बिलकुल छोड़ दिए जाने की बात कहने का पूरा अधिकार होगा।

पर आज सारे ही आश्वासनों को ठुकरा दिया गया है। सरकार द्वारा अपनाई गई इस प्रक्रिया का एकमात्र परिणाम यह होगा कि मूल अधिनियम की धाराओं में हम संशोधन न कर सकेंगे।

अतः मेरा प्रथम निवेदन तो यह है कि प्रस्तुत विधेयक को अनियमित घोषित कर दिया जाए, क्योंकि अजमेर मेरवाड़ा किराया नियंत्रण विधेयक, १९५१ के विषय में अध्यक्ष महोदय द्वारा २० मार्च १९५१ को दी गई प्रशस्ति के निर्देश में मैं पूछूंगा कि क्या समाप्त होने वाले अधिनियम की अवधि बढ़ाने के लिए लाए गए विधेयक के प्रसंग में सरकार द्वारा साथ ही मूल अधिनियम में संशोधन भी रखे जा सकते हैं। उक्त विधेयक के प्रसंग में स्वर्गीय मित्र देशबंधु गुप्ता द्वारा मूल अधिनियम में रखे गए संशोधनों पर विचार करते हुए अध्यक्ष महोदय ने यह विचार प्रकट किया था कि 'ब्रिटेन की लोक-सभा के अनुभवों पर आधारित पूर्व दृष्टांतों के अध्ययन के बाद मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि सामान्यतः समाप्त होने वाले अधिनियम की अवधि बढ़ाने वाले विधेयक के प्रसंग में समाप्त होने वाली विधि के उपबंधों में सारपूर्ण संशोधन करना साधिकार न होगा। इस सामान्य नियम में विधेयक की प्रकृति के अनुसार कुछ अपवाद हो सकते हैं, पर वे प्रक्रियासंबंधी और परिमित प्रकार के ही होंगे; मूल बात यही है कि अवधि बढ़ाने के लिए लाए गए विधेयक को मूल अधिनियम में संशोधन करने का अवसर न समझा जाएगा।' तो इस प्रशस्ति के अनुसार मेरा निवेदन है कि जिस प्रकार सदस्यों को संशोधन रखने का अधिकार नहीं है, उसी प्रकार सरकार पर भी यह रोक लागू होती है। अतः इस विधेयक को अनियमित घोषित कर देना चाहिए।

पर यदि आप प्राविधिक रूप से इस विधेयक के प्रारूप को नियमित समझें, तो दूसरी बात मुझे यह कहनी है कि सरकार द्वारा दिए गए वचनों की दृष्टि में आप एक ऐसी प्रशस्ति दे दें, जिससे मूल निवारक-निरोध अधिनियम के प्रत्येक उपबंध में संशोधन रखना नियमित हो जाए और सदस्यों को उस पर विवाद ही नहीं संशोधन तक रखने का अधिकार मिल जाए।

इस संबंध में ब्रिटेन की लोक-सभा में विद्यमान नियमों और अपने नियमों को देखना होगा। अपने नियम ७५ में बताया गया है कि नियम ७४ में निर्दिष्ट प्रस्तावों के प्रस्तुत होने पर विधेयक के सिद्धांतों और उपबंधों पर साधारणतः विवाद हो सकता है, पर सिद्धांतों के स्पष्टीकरण के लिए आवश्यक विवादों को छोड़ विधेयक के अन्य विवरणों को न लिया जाए। इसके तथा अध्यक्ष महोदय की प्रशास्तियों के आधार पर हम पूरे अधिनियम पर विचार कर सकेंगे। संशोधनों के विषय में अवश्य यह देखना होगा कि क्या पूरे अधिनियम में संशोधन रखना संभव है, क्योंकि नियम १०० (१) में संशोधनों का विधेयक के क्षेत्र और विषय के अंतर्गत और उससे संगत रहना आवश्यक बताया गया है।

ब्रिटेन की लोक-सभा में जब पूरा सदन एक समिति के रूप में एक विधेयक पर विचार कर रहा था, तब यह प्रश्न उठा था कि क्या विधेयक के क्षेत्र से बाहर के संशोधनों पर विचार करना समिति के अधिकार की बात है। 'मे' के 'संसदीय व्यवहार' ग्रंथ के नए १५वें संस्करण के पृष्ठ ५३२-३३ पर इस संबंध में बताया गया है कि पुराने अधिनियम की अवधि बढ़ाने वाले विधेयक के प्रसंग में समिति या सदन को अनुसूची में ऐसे संशोधन करने का अधिकार है, जिससे मूल अधिनियम का कोई उपबंध समाप्त हो जाए, पर उसके उपबंधों को बदलने के लिए संशोधन नहीं रखा जा सकता। किसी विधेयक को एक समिति को निर्दिष्ट करते समय सदन आवश्यक समझे तो समिति को मूल अधिनियम के उपबंधों का परीक्षण

[डा० एस० पी० मुखर्जी]

करने और विधेयक के क्षेत्र से बाहर तक जाने का अनुदेश दे सकता है। पर जैसा हमारे नियमों में है, प्रस्तावित संशोधन प्रस्तुत विधेयक के क्षेत्र से संगत ही होना चाहिए।

अतः मेरा निवेदन है कि या तो हमें पूरे अधिनियम पर विचार करने और उसमें संशोधन रखने का अधिकार दिया जाए, या सरकार विधेयक का एक नया प्रारूप सामने लाए जिसमें पुराने उपबंध भी हों और नए उपबंध भी। इन विशेष परिस्थितियों, विधेयक के महत्वपूर्ण होने और सरकार द्वारा दिए गए इस वचन की दृष्टि में कि नई संसद् पूरे अधिनियम पर विचार कर सकेगी या तो आप सदन की ओर से ऐसे अनुदेश दे दें या सरकार स्वतः इस सुझाव को मान ले।

मैंने इस अवसर पर यह प्रश्न इस कारण उठाया है कि विधेयक और मूल अधिनियम पर होने वाले इस साधारण विवाद के अवसर पर हमें विवाद का क्षेत्र निर्धारित कर लेना चाहिये और प्रधान मंत्री भी नई संसद् के ऊपर यह प्राविधिक बंधन न लगाना चाहेंगे। बाद में सदन भले ही कुछ भी निर्णय करे। पर इस प्रकार का विधेयक सामने लाकर उसके ऊपर प्राविधिक बंधन न लगाये जाने चाहियें। और हमें तो इसका विरोध करना ही है, क्योंकि हमें इसके आगे बढ़ाने के लिये कोई औचित्य नहीं दिखाई देता और यदि हम सदन को कायल न कर सके और विधेयक को जनमत के लिये परिचालित न करा सके, तो हम इसके प्रत्येक उपबंध में संशोधन रखकर लोगों को अनावश्यक दबाव से बचाने का यत्न करेंगे। पर यदि हमारा क्षेत्र सीमित रहा, तो हम वैसा न कर सकेंगे। अतएव इस समय मैं यह औचित्य प्रश्न उठाता हूं।

श्री एन० सी० चटर्जी: 'मे' के 'संसदीय व्यवहार' ग्रंथ की 'समाप्त होने वाली विधियों की अवधि बढ़ाने वाले विधेयक' वाली कंडिका पढ़ने पर पता चलेगा कि इस विधेयक को उक्त परिभाषा में नहीं समेटा जा सकता, क्योंकि एक विशेष तिथि तक अवधि बढ़ाने के सिवा यह मूल अधिनियम की विशेष धाराओं का संशोधन तक कर रहा है। अतः संशोधनों को अनियमित ठहराने के लिये 'मे' के ग्रंथ और माननीय अध्यक्ष की प्रशास्तियों पर निर्भर न रहा जा सकेगा। 'मे' के ग्रंथ में विधेयक की अवधि बढ़ाने की बात अनुसूची में रखने के लिये कहा गया है, विधेयक के खंडों में नहीं। वह दूसरी ही प्रकार के विधान की बात लेते हैं। इसमें सारपूर्ण संशोधन भी हैं अतः इसे उस परिभाषा में नहीं समेटा जा सकता। फिर धारा ३ में एक नई उपधारा भी रखी जाने वाली है कि राज्य सरकारें केन्द्रीय सरकार के पास रिपोर्ट भेजेंगी आदि। अतः पुराने अधिनियम के समाप्त होने के बाद २ अक्टूबर, १९५२ से धारा ३ बिल्कुल भिन्न होगी। ऐसे संशोधनों को अवधि बढ़ाने के नाम से नहीं पुकारा जा सकता। पुराने अधिनियम की धाराओं को संशोधित कर नई धारायें भी रखी जा रही हैं। उधर 'मे' का ग्रंथ कहता है कि 'समाप्त होने वाली विधि की अवधि बढ़ाने वाले विधेयक में मूल उपबंधों को संशोधित करने वाले संशोधन रखना विधेयक के क्षेत्र से बाहर होगा।' पर मेरा निवेदन है कि मूल अधिनियम में संशोधन करने वाला यह विधेयक उस परिभाषा में आता ही नहीं। अतः मूल उपबंधों से सम्बन्धित हमारे संशोधन अनियमित नहीं ठहराये जा सकते और मेरी समझ से संसद् द्वारा उन पर विचार करना नियमित ही होगा।

श्री रघुरामय्या (तेनालि) : श्रीमान्, इसे मैं समाप्त होने वाले विधेयक को जारी रखने वाला विधेयक नहीं समझता, क्योंकि इस में कुछ लाभप्रद प्रस्ताव रखे जा रहे हैं और श्री चटर्जी द्वारा दिया गया उद्धरण जारी रखने वाले विधेयक से ही सम्बन्धित है। दूसरे संशोधन न केवल अवधि वाले खंड का हो सकता है, बल्कि विधेयक के अन्य खंड भी संशोधित किये जा सकते हैं। सदन के लिये तो यह अच्छा ही है कि सरकार मूल अधिनियम में वांछित सभी संशोधनों को एक विधेयक के रूप में प्रस्तुत करे। अवधि सम्बन्धी खंड में संशोधन करने में तो मेरे माननीय मित्र को भी कोई आपत्ति नहीं है। फिर समय की बचत की दृष्टि से भी अन्य संशोधनों का एक अलग विधेयक के रूप में रखा जाना उचित न होगा। संशोधनों को छोड़ शेष अधिनियम की चर्चा नहीं हो सकती। अतः मेरे विचार से यह विधेयक नियमित ही है।

उपाध्यक्ष महोदय : औचित्य प्रश्न सम्बन्धी विवाद स्वतंत्र विवाद न बनाकर माननीय सदस्यों को चाहिये कि केवल तथ्य ही बतायें और प्रमाण के लिये उद्धरण दें। वही उद्धरण दुहराने भी न चाहियें। क्या श्री चटर्जी सदन में ऐसे किसी निर्णय का उद्धरण दे सकेंगे, जिस में अवधि बढ़ाने वाले विधेयक में विधेयक के निर्माताओं द्वारा संशोधन भी रख देना अनुचित ठहराया गया हो।

डा० एस० पी० मुखर्जी : श्रीमान् इस का उत्तर मैं दिये देता हूं। ब्रिटेन की लोक सभा के विवाद, १८७४ के १०१८वें स्तम्भ में एक निर्णय है, जिसका हमारे अध्यक्ष ने मार्च, १९५१ में भी उल्लेख किया था। उस निर्णय में बताया गया था कि "विधेयक में अपने क्षेत्र से बाहर संशोधन करते समय समिति को सदन से अनुदेश प्राप्त करने चाहियें। समिति को अधिकार है कि विधेयक का कितना अंश जारी रखा जाये, पर लिमरिक के माननीय सदस्य द्वारा रखे गये संशोधन जैसे संशोधन रखना इसके अधिकार में नहीं। यह ध्यान में रखना होगा कि यह विधेयक संशोधन के लिये नहीं बल्कि अवधि बढ़ाने के लिये है।" वैसे ही इस विधेयक का मूल उद्देश्य १ अक्टूबर, १९५२ को समाप्त होने वाले विधेयक की अवधि बढ़ाना ही है, पर इस में कुछ संशोधन भी रखे गये हैं।

उपाध्यक्ष महोदय : मेरा मतलब था कि क्या किसी निर्णय में विधेयक के निर्माताओं द्वारा संशोधन रखने में आपत्ति की गई है ?

श्री एन० सी० चटर्जी : ठीक है, पर उस दशा में आप मूल अधिनियम सम्बन्धी संशोधनों को इसी कारण अनियमित नहीं ठहरा सकते कि यह अवधि बढ़ाने वाला विधेयक है।

उपाध्यक्ष महोदय : उद्धृत प्रमाण निर्माता द्वारा विधेयक में संशोधन करने का निर्देश नहीं करते। अभी उद्धृत प्रमाण में एक माननीय सदस्य समिति-अवस्था में पूरे ही विधेयक का प्रश्न लेना चाहते थे। वह बात दूसरी थी। मैं तो यह जानना चाहता हूं कि क्या ब्रिटेन की लोक-सभा में ऐसा दृष्टांत है कि अवधि बढ़ाने वाले विधेयक में स्वयं निर्माता द्वारा देशहित विरोधी कुछ अंश संशोधित करने पर रोक लगाई गई हो।

डा० एस० पी० मुखर्जी : मेरे द्वारा निर्दिष्ट पृष्ठ ५३२ पर बताया गया है कि अनुसूची में बताये गये अधिनियमों की अवधि बढ़ाने वाले विधेयकों पर वे निबंध लागू होंगे, जो पृष्ठ ५३३ पर बताये गये हैं। अतः 'मे' का ग्रंथ यह स्पष्ट कर देता है कि अवधि बढ़ाने के उद्देश्य से प्रस्तावक को अलग विधेयक रखना होगा। खिचड़ी नहीं बनाई जा सकती। वैसा करने पर सारा मूल अधिनियम सदन के सामने आ जायेगा और यह दूसरे सदस्यों को न मिलने वाला विशेषाधिकार सरकार को ही अकेले-अकेले नहीं मिल सकता।

उपाध्यक्ष महोदय : वहां तो प्रभावी खंड भर है, पर क्या इसका अर्थ यह है कि प्रभावी अंश इस विशिष्ट रूप में हो ?

डा० एस० पी० मुखर्जी : हां श्रीमान्, यह भी बताया गया है कि अधिनियमों वाली अनुसूची भी दी जाये ।

उपाध्यक्ष महोदय : ऐसी बात नहीं । क्या कुछ खंडों या धाराओं को छोड़ शेष का निरसन करने वाले दृष्टांत हमारे पास नहीं हैं?

डा० एस० पी० मुखर्जी : हां, ब्रिटेन की लोक-सभा में यह भी एक व्यवहार है कि अनुसूची के किसी अधिनियम की अवधि बढ़ाई जा सकती है, आवश्यकता हो तो कुछ अधिनियम विलोपित किये जा सकते हैं, पर किसी अधिनियम में संशोधन या रूपभेद नहीं किये जा सकते ।

उपाध्यक्ष महोदय : मैं पिछले अधिनियमों की धाराओं की बात कर रहा हूं । क्या यह नहीं कहा जा सकता कि 'अमुक धारा को छोड़ अधिनियम का निरसन कर दिया जाये ।'

डा० एस० पी० मुखर्जी : तब प्रभावी खंड में अवधि बढ़ाने की बात कह कर अनुसूची में दिये गये अधिनियम के इच्छित अंश लुप्त कर देना ठीक प्रक्रिया होगी । ब्रिटेन की लोक-सभा में पूरी धारा लुप्त करने वाले संशोधन रखे जाते हैं, दूसरे नहीं । आप सूची में ही विलोपन सम्बन्धी संशोधन रख सकते हैं । यदि सरकार कुछ धाराओं के विलोपन के साथ ही मूल अधिनियम में संशोधन करना आवश्यक मानती है, तो वह अवसर पूरे सदन को दिया जाये । प्राविधिक आपत्ति की ही बात नहीं, व्यावहारिक रूप में भी हमें इससे पूरे अधिनियम पर विचार करने का अवसर मिल जाता है, और वह हमें मिलना ही चाहिये ।

उपाध्यक्ष महोदय । अधिक तर्क आवश्यक नहीं । मेरी समझ से डा० एस० पी० मुखर्जी द्वारा उद्धृत निर्णय और माननीय अध्यक्ष महोदय द्वारा कही गई बात इस विधेयक पर होने वाले साधारण विवाद के आड़े नहीं आतीं । खंडों पर विचार करते समय यह प्रश्न उठेगा कि संशोधन माने जायें या नहीं या प्रवर-समिति को निर्देश के प्रस्ताव पर यह कहा जा सकेगा कि उसे क्या अनुदेश दिये जायें । तब तक विवाद चल सकता है । सदन यह सुझाने के लिये स्वतंत्र है कि मूल विधेयक का चालू रहना कितना खतरनाक हो गया है । इन सब बातों का साधारण शब्दों में निर्देश करके सदन को विचार-प्रस्ताव स्वीकार करने या न करने के लिये समझाया जा सकता है ।

श्री गाडगिल (पूना मध्य) : मैं निवेदन कर दूं कि अध्यक्ष महोदय का अभिप्राय यह नहीं था कि पुराने अधिनियम के सिद्धांतों पर पुनर्विचार किया जाए । उन्होंने कहा था ऐसे विधान के मूल सिद्धांत तो विधि पारित करते समय सदन द्वारा स्वीकार किए ही जा चुके हैं, अतः इसके प्रशासन आदि में सुधार के लिए साधारण समीक्षा तो ठीक होगी, किसी धारा को संशोधित करने की अनुमति न मिल सकेगी । अतः हम पिछले अधिनियम के सिद्धांतों को नहीं ले सकते, उसकी व्यवस्था के संबंध में साधरण विवाद-मात्र कर सकते हैं ।

उपाध्यक्ष महोदय : संशोधनों के संबंध में ही हमें इन बातों पर ध्यान देना होगा और तभी निर्णय दिया जा सकेगा । अब श्री गुरुपादस्वामी अपना संशोधन रखें । इस संबंध के शेष संशोधन नहीं रखे जायेंगे, हां वे माननीय सदस्य भी समयानुसार बोल सकेंगे ।

श्री एम० एस० गुरुपादस्वामी (मैसूर) : मैं प्रस्ताव करता हूं कि :

> "विधेयक को मत प्राप्त करने के लिए १५ अक्टूबर, १९५२ तक परिचालित किया जाए।"

कब्र के पास रोती हुई महिला के यह कहने पर कि ससुर, पति और पुत्र के चीते द्वारा मार डाले जाने पर भी वह कब्र से इसलिए नहीं हट रही है कि यह स्थान अत्याचारी शासन से कम खतरनाक है, प्रसिद्ध दार्शनिक कनफ्यूशियस ने अपने अनुयायियों से कहा था कि अत्याचारी शासन चीतों और कब्र की अपेक्षा कहीं अधिक भयंकर है । इस प्रकार की विधि अत्यंत ही असभ्यजनोचित, पाशविक, अत्याचार-पूर्ण और भयानक है। इसका लक्ष्य नागरिकों की स्वाधीनता का अपहरण है, जो हमें कुल ४ वर्ष पहले ही मिली है और जिसका बहुत कुछ फल अभी हम चख भी नहीं पाये हैं । और कितने खेद की बात है कि उत्तरदायी शासन ने इतने शीघ्र ही यह प्रहार किया है। शक्ति आती है, उसका प्रयोग होता है, दुरुपयोग होता है और वह नष्ट हो जाती है। यही कांग्रेस को मिली शक्ति की कहानी है । हम विरोधी दल वाले चाहते हैं कि जब तक हम दूसरे प्रजातंत्री देशों की भांति सरकार बना सकने योग्य न हो जाएं, कांग्रेस हमारी स्वाधीनता को संगठित बनाए रहे और लोगों के मौलिक अधिकारों की हत्या न करे ।

यह हमारे बड़े दुर्भाग्य का दिन है, क्योंकि गृह मंत्री हमारे द्वारा न चाहे गए और दुनिया के सामने हमारे राष्ट्र की प्रतिष्ठा धूल में मिलाने वाले एक ऐसे विधेयक को सामने ला रहे हैं जो हमारी सारी की सारी स्वाधीनता छीने ले रहा है। हम दक्षिण-अफ्रीका और लंका आदि में भारतीयों के प्रति दुर्व्यवहार की शिकायत करते हैं, पर हमारे उत्तरदायी प्रतिनिधि स्वयं हमारी स्वाधीनता छीन रहे हैं। जनता के उपर अधिकार प्रदर्शन करने का कुफल वही होगा, जो चीन और अमरीका आदि में हुआ । देश में आज़ादी के नाम पर जो कुछ प्राप्त किया है उसे गृह मंत्री सार्वजनिक सुरक्षा के नाम पर अपने इस क्रूर-विधान द्वारा विनष्ट कर देना चाहते हैं । आशा है यह सर्वप्रभुत्व संपन्न सदन उनको वह न करने देगा । जब देश में आज पूर्ण शांति है और कोई उपद्रव नहीं है, तो भले ही संविधान में इसका उपबन्ध हो, आज इसकी कोई आवश्यकता नहीं है । शासक और शासित वाली पुरानी लीला अब आज़ादी के बाद चलती न रहनी चाहिए । (अंतर्बाधाएं)

११ म० पू०

उपाध्यक्ष महोदय: माननीय सदस्य धैर्य से सुनें और सदन की मर्यादा निबाहें । असंगत बातें या पुनरुक्तियां अध्यक्ष द्वारा रोकी जायेंगी और सदस्यगण अपनी जिज्ञासाएं भाषण के अन्त में शांत कर सकते हैं ।

श्री एम० एस० गुरुपादस्वामी: हमने बहुत अत्याचार देखें हैं, पर बहुमत वाली इस कांग्रेस का यह अत्याचार अनोखा ही है, क्योंकि वह सदा जनता को अपने साथ समझती है । पर यदि इसी अधिनियम को लेकर चुनाव हो तो निस्संदेह उसे मुंह की खानी पड़ेगी । उधर गृह मंत्री जी भले ही अपने संशोधनों को सुधार बताएं, जनता को उनसे कोई लाभ नहीं होने जा रहा है । प्रति वर्ष अधिनियम की अवधि एक वर्ष बढ़ाई जाती थी, अबकी बार न जाने क्यों यह दो वर्ष के लिए बढ़ाई जा रही है। क्या भविष्य में कोई भयानक तूफान या उपद्रव उठ खड़े होने का भय है ? मेरी समझ से तो इसकी अवधि कुछ महीनों के ही लिए बढ़ानी चाहिये और अगले सत्र में आवश्यक हो तो इसे फिर बढ़ा दिया जाए। देश का शासन ऐसे विधानों से न होना चाहिए। तथाकथित शान्ति और व्यवस्था के लिए इसे अधिनियमित किया जा रहा है, पर यह तो उलटे उसे बिगाड़ेगा, क्योंकि लोग इसके विरुद्ध हैं और गुप्त मतदान होने पर अधिकांश कांग्रेसी तक निश्चय ही इसके विरुद्ध मत देंगे ।

[श्री एम० एस० गुरुपादस्वामी]

वकील, साक्षी और न्यायलयों का उपबंध न होने के कारण लोग इसे प्रतिक्रियावादी विधान मान रहे हैं। व्यक्ति के इन मौलिक अधिकारों के न रहने पर प्रजातंत्र टिक न सकेगा। कारण बिना बताए और सूचना बिना दिए होने वाली यह गिरफतारी विधि विहित नहीं है। यह तो जनसाधारण के विरुद्ध युद्ध ही है और संसद् को ऐसा विधान पारित न करना चाहिए। फिर विधेयक में गिरफ्तारी और नजरबंदी में कोई भेद नहीं रखा गया है। ये दोनों कार्य अलग-अलग होने चाहिए। सन् १९४९ में बंबई में अनवर बेगम वाले अभियोग में तो मौखिक आदेश से ही नजरबंदी की गई थी। यह तरीका अप्रजातंत्रीय है और व्यक्ति के लिये जरा भी स्वाधीनता नहीं छोड़ता। धिर राज्य और केन्द्रीय सरकार के मामलों में ये भेद नहीं रखा गया जैसा कि कल गृह मंत्री महोदय कह रहे थे कि सार्वजनिक सुरक्षा और अत्यावश्यक संभरण राज्य के विषय हैं और रक्षा, देश की सुरक्षा और वैदेशिक कार्य केन्द्र के। न सबको इकट्ठा ही रखा गया है। भले ही ये समनुवर्ती सूची में हों, राज्यों को यह अधिकार न मिलना चाहिए कि देश की रक्षा या वैदेशिक कार्य में बाधक कोई कार्यवाही करने वालों की गिरफ्तारी का आदेश वे दे सकें।

फिर धारा ३ में अधिकारी के 'संतुष्ट' होने पर आदेश निकालने की बात कही गई है। अदालतों ने भी इसे पोल बताया है, क्योंकि सन्तोष सकारण होना चाहिए और अधिकारी के पांस तर्कसंगत और युक्तियुक्त हेतु होने चाहिए। अतः इस संतोष की परिभाषा करनी चाहिए।

दंडात्मक विरोध में अपराध कर चुकने वाले को दंडित किया जाता है, और निवारक विरोध संभवतः संभावी अपराधी के निरोध के लिए है। इन दोनों में और स्वच्छंद-निरोध में भेद करना कठिन है। इनको भी स्पष्ट करना चाहिए।

हमारे प्रजातंत्री देश में प्रत्येक युक्तिसंगत आदेश का पालन किया जायेगा और उस विषय में यदि सरकार जनता का अविश्वास करेगी तो जनता भी सरकार का अविश्वास करेगी। विध्वंसात्मक कार्यवाहियों को भी देश की दंड विधि के ही अधीन निपटाया जा सकता है। फिर कुछ गुंडों की बात छोड़दें तो अधिकांश जनता शांन्तिप्रिय और न्यायभक्त है। अतः इस विधान की आवश्यकता ही नहीं है और इसे वापस लेकर ही और जनता में विश्वास रख कर ही शांन्ति की स्थापना की जा सकती है, अन्यथा जनता की सहानुभूति खोकर प्रजातंत्र शवतुल्य बन जाएगा। थीड़े से उपद्रवी व्यक्तियों के नाम पर सर्वसाधारण के लिए भयानक और कठोर विधान न बनाइए, नहीं तो हमारे प्रजातंत्र के ऊपर कलंक का टीका लग जाएगा। अतः इस विधान को पारित न कर हमें इसे जनमत के लिए परिचालित करना चाहिए क्योंकि वस्तुतः संसद् हमारी सर्वप्रभुत्व संपन्न जनता का ही प्रतिनिधित्व करने के ही कारण सर्वप्रभुत्व संपन्न बनी है। अतः ऐसे विधानों पर हमें उनका मत जानना चाहिए।

उपाध्यक्ष महोदय : संशोधन सदन सामने प्रस्तुत किया जाता है। अब प्रवर-समिति को निर्देश करने वाले प्रस्ताव हैं। उनके प्रस्तुत होने पर इकट्ठा दोनों पर विचार हो सकेगा।

श्री जवाहरलाल नेहरू : मेरा निवेदन है कि इस विधेयक के महत्वपूर्ण होने के कारण इसका दोनों सदनों की संयुक्त प्रवर समिति को निर्देश किया जाए। ऐसा पहली ही वार हो रहा है और इस संबंध में हमारे प्रक्रिया नियम स्पष्ट नहीं हैं। इस सदन के सदस्यों के नाम बताने वाला एक प्रत्ताव हम पारित कर

सकते हैं, और फिर सहमति और उस सदन के नाम प्राप्त करने के लिए उसे वहां भेज सकते हैं। प्रत्यक्ष है कि हम दूसरे सदन के सदस्यों के नाम नहीं चुन सकते, पर अपने नियमों के अनुसार अपने सदस्यों के नाम भेज कर उनके द्वारा चुने जाने वाले सदस्यों की संख्या बता सकते हैं। इस प्रकार कोई कठिनाई न होगी।

सरदार हुक्म सिंह (कपूरथला-भटिंडा) दोनों सदनों के सदस्यों का अनुपात क्या होगा ?

कुछ माननीय सदस्य : दो और एक का।

श्री जवाहरलाल नेहरू : यह दोनों सदनों की सदस्यता के लगभग अनुपात से होगा। हम संख्या निश्चित तो नहीं कर सकते, पर इस बार उनसे सहमति ले सकते हैं। बाद में हम इस संबध में स्पष्ट नियम बना सकेंगे, जो अभी विद्यमान नहीं है। संख्या सदनों की सदस्यता के अनुपात से होने पर उनकी सहमति में संदेह कम रहेगा।

उपाध्यक्ष महोदय : उस सदन में विधेयक के पुरः स्थापित होने पर वे भी प्रवर-समिति को निर्देश करने के लिए वैसा प्रस्ताव कर सकेंगे। प्रस्ताव दूसरे सदन में जाएगा, पर विधेयक के पारित होने के बाद वहां जाने की प्रक्रिया है। इस विधेयक के वहां भी पूरःस्थापित होने में कोई आपत्ति नहीं है।

श्री जवाहरलाल नेहरू : श्रीमान्, मेरा निवेदन है कि उससे विशेष कठिनाई होगी, क्योंकि बात इसी विधेयक की ही नहीं है, सारे विधेयकों के साथ-साथ दोनों भवनों में पूरःस्थापित होने की प्रक्रिया अपनाने से अकल्पित कठिनाइयां होंगी, अन्यथा हम संयुक्त प्रवर समितियों को निर्देश न कर सकेंगे, जैसा हमारे नियमों में उपबंध है। हम परिषद् के सभापति से नाम भेजने के लिए अनुरोध करेंगे। हमें विदित नहीं कि उन्होंने क्या कर लिया है, क्या नहीं। इसका निश्चय उनको करना है। यदि वे अस्वीकार करेंगे तो कोई बात नहीं। हमने तो उनको अवसर दिया और बुलाया। पर मैं बता दूं कि परिषद के सभापति ने औपचारिक और अनौपचारिक रूप में तथा अपनी और अपने सदन की ओर से इस बात पर बल दिया है कि संयक्त प्रवर-समितियां बनाई जाएं। मैं इसी मामले को नहीं लेता, सिद्धांततः संयुक्त समितियां होनी चाहिए, और हमने उनको अश्वासन दिया है कि कुछ छोटे-मोटे विधेयकों को छोड़ सारे महत्व-पूर्ण विधेयकों के लिब्र हम संयुक्त समितियों का स्वागत करेंगे। मांग राज्य-परिषद से ही आई थी और हमने अश्वासन दिया है, और इस महत्वपूर्ण मामले में हमें वह आश्वासन सार्थक बनाना चाहिए। यदि उधर कुछ प्राविधिक अड़चन हुई तो वे निर्णय करेंगे, हमें तो यह निमंत्रण देना ही चाहिए।

श्री एन० सी० चटर्जी : प्रधान मंत्री की बात ब्रिटेन की लोक-सभा के व्यवहार के अनुकूल ही है। वहां एक सदन ने इस विषयक संकल्प पारित कर दूसरे सदन को संदेश भेजा दिया जाता है।

उपाध्यक्ष महोदय : नियम ७४ (१) (३) में उपबन्ध है कि किसी विधेयक के पुरःस्थापित होने पर प्रभारी सदस्य द्वारा यह प्रस्ताव रखा जा सकता है कि परिषद की सहमति के साथ इसका दोनों सदनों की संयुक्त समिति को निर्देश किया जाए, पर यह समिति कैसे मिले ?

श्री जवाहरलाल नेहरू : उनको संदेश भेज कर।

उपाध्यक्ष महोदय : बाद म नियम ७५ (२) (क) में फिर कहा गया है कि विचार-प्रस्ताव रखे जाने के बाद कोई भी सदस्य इसका सदन की प्रवर-समिति या परिषद् की सहमति से दोनों सदनों की संयुक्त समिति को निर्देश करन का प्रस्ताव रख सकता है।

श्री जवाहरलाल नेहरू : निवेदन है कि पीछे जो नियम बनेंगे उनमें हमें यही ध्यान देना होगा कि परिषद् की सहमति कैसे प्राप्त हो और उनसे अपने सदस्यों का नामनिर्देशन करने के लिए कैसे कहा जाए।

उपाध्यक्ष महोदय : अपने नाम चुनकर सहमति और उनके नाम प्राप्त करने का अर्थ है कि एक ही सदन समिति नियुक्त करता है। उसके लिए पृथक् संकल्प अपेक्षित नहीं और यदि वे सहमत न हुए, तो हमारी समिति तो बनी ही रहेगी। यह मूल विचार-प्रस्ताव में एक संशोधन है जैसे कि परिचालन वाला संशोधन। दोनों संशोधनों को अलग लेने में बहुत समय लगेगा।

डा० काटजू : तीन-चार दिन पहले ही दंड विधि संशोधन विधेयक के संबंध में परिचालन और प्रवर समिति को निर्देश संबंधी दोनों ही प्रस्तावों पर साथ साथ विवाद हुआ था, और प्रवर-समिति वाले प्रस्ताव के पारित हो जाने पर दूसरा स्वतः गिर गया था।

उपाध्यक्ष महोदय : में उसी विषय पर दो अलग विवाद नहीं चाहता। परिचालन-प्रस्ताव को चाहें तो पहले ले लें। परिचालन और प्रवर समिति को निर्देश के प्रस्तावों के समर्थकों द्वारा अलग-अलग अपना-अपना मत व्यक्त कर दिए जाने पर लोग अपना निष्कर्ष निकाल लेंगे। समिति के लिए कुछ नाम अभी दे दिये जाएं, और जो लोग पहले प्रस्ताव के अस्वीकृत होने तक प्रवर समिति में भाग नहीं लेना चाहते उनके नाम बाद में जोड़े जा सकेंगे।

श्री एच० एन० मुखर्जी : परिचालन-प्रस्ताव के अलग प्रकार के होने के कारण आप स्वयं स्वविवेक से वक्ताओं को चुनें और उन पर पहले विचार कर लिया जाए। यहां वक्ता इतने उत्तरदायी तो हैं ही कि उन्हीं बातों को दहरा कर देर न करें।

उपाध्यक्ष महोदय : मैं सहमत नहीं हूं, क्योंकि मेरे लिए यह कठिन है। दोनों प्रस्ताव साथ-साथ लिए जाएं, और सदस्यगण जो चाहें तर्क दें। अतः दोनों पर साथ साथ विवाद चलने की अनुमति देता हूं। हां मत पहले परिचालन-प्रस्ताव पर ही लिया जाएगा और उसके अस्वीकृत होने पर दूसरे प्रस्ताव पर। सरदार हुक्म सिंह का प्रस्ताव संयुक्त प्रवर-समिति का निर्देश नहीं करता और उसमें मूल अधिनियम की धाराओं पर भी विचार किए जाने का उपबंध है। इस पर मैं आगे चलकर निर्णय दूंगा कि उन संशोधनों को अनुमति दी जाए या नहीं। हां, इस प्रस्ताव को स्वतंत्र रूप में रखा जा सकता है।

डा० पी० एस० देशमुख : अभी मैं अस्थायी सूची दे रहा हूं, और राज्य-परिषद् के नाम आ चुकने पर एक अलग प्रस्ताव द्वारा इसे अंतिम रूप दिया जा सकेगा।

मैं प्रस्ताव करता हूं कि :

"विधेयक को श्री एस०ए० आयंगर, श्री टी० सुब्रह्मण्यम्, श्री बी० जी० मेहता, श्री एन० पी० नथवानी, श्री एच० वी० पाटस्कर, श्री बी० शिवा राव, श्री ए० एम० टामस, श्री अलगू राय शास्त्री, पं० बालकृष्ण शर्मा, श्री टी० एन० सिंह, श्री फीरोज गांधी, श्री ए० पी० सिन्हा, श्री एल० एन० मिश्र, श्री एल० के० मैत्रा, श्री सैयद अहमद, श्री बी० के० दास, श्री एच० सी० हेडा, श्री बी० के० बरुआ, डा० एस० पी० मुखर्जी, श्री एन० सी० चटर्जी, श्री जयपाल सिंह, श्री जसवंत राज, श्री सारंगधर दास, श्री दामोदर मेनन, श्री जी० एस० आल्तेकर, डा० के० एन० काटजू और प्रस्तावक से बनी एक प्रवर-समिति को सौंपा जाए

तथा प्रवर-समिति को अपना प्रतिवेदन २५ जुलाई, १९५२ तक उपस्थित करने का निर्देश दिया जाए।"

डा० एस० पी० मुखर्जी : मैंने सहमति यही सोचकर दी थी कि समिति को पूरे अधिनियम पर विचार करने दिया जाएगा, परंतु उस पर अब तक कुछ निर्णय नहीं हुआ है। पता नहीं प्रधान मंत्री जी क्या सोचते हैं।

श्री जवाहरलाल नेहरू : मेरी प्रतिक्रिया का प्रश्न ही नहीं क्योंकि किसी को उसकी इच्छा के विरुद्ध प्रवर-समिति में काम करने के लिए विवश नहीं बनाया जा सकता। चूंकि उपाध्यक्ष महोदय तत्काल कुछ नाम मांग रहे थे, अतः कुछ नाम दिए गए हैं। जो नहीं रहना चाहें, उनके नाम निकाल दिए जाएंगे और यथासमय और नाम जोड़ दिए जाएंगे। पूरे अधिनियम पर विचार करने संबंधी प्रश्न का अध्यक्ष महोदय को निर्देश किया गया है। समिति में काम करना असुविधाजनक समझने वाले माननीय सदस्य अपने नाम बने रहने दें। सहमति दे देने के बाद अब जो लोग इसे कठिन समझते हैं, उनके नाम अभी न भी दिए जाएं और विवाद समाप्त होने पर दिए जाएं तो मेरी समझ से कोई भारी आपत्ति न होगी।

डा० एस० पी० मुखर्जी : तो मेरा नाम न दिया जाए।

श्री सारंगधर दास (ढनकनाल-पश्चिम कटक) : मेरा और श्री दामोदर मेनन का भी।

श्री टी० एस० ए० चेटियार (तिरुपुर): और इसी प्रस्ताव में परिषद् से भी कुछ सदस्य नियुक्त करने के लिए अनुरोध कर दिया जाए।

उपाध्यक्ष महोदय : वह स्वतंत्र प्रस्ताव होगा, डा० देशमुख का यह सूची संख्या ५ का संशोधन संख्या १४० संयुक्त प्रवर समिति का निर्देश नहीं करता।

डा० एस० पी० मुखर्जी : प्रक्रिया नियम ७४ के उपबंध के अनुसार अभी ही यह किया जा सकता है।

श्री **जवाहरलाल नेहरू :** ठीक है, तब रूप यों होगा :

"यह सदन राज्य परिषद् से सिफारिश करता है कि निवारक निरोध अधिनियम, १९५० में पुनः संशोधन करने वाले विधेयक को दोनों सदनों की एक प्रवर-समिति को सौंपा जाए और उस प्रवर-समिति में .... इस सदन के सदस्य हों, और ..... राज्य-परिषद् के सदस्य हों।"

और यह सदन प्रस्ताव में अपने नाम दे देगा।

डा० पी० एस० देशमुख : मैं माननीय प्रधान मंत्री का सुझाव मान लेता हूं। इस विधेयक के सिद्धांत पर संविधान की सूची में इसे निविष्ट करते समय संविधान-सभा में पूरा पूरा विवाद हुआ था। फिर निवारक निरोध विधेयक पारित करते समय और फिर उसमें संशोधन करते समय भी पूरे-पूरे विवाद हो चुके हैं और यह सिद्धांत अनुमोदित हो चुका है। अतः इस विधेयक को लेकर होने वाला इतना शोर व्यर्थ है, क्योंकि यह तो एक प्रतिशत उपद्रवी लोगों से शेष ९९ प्रतिशत जनता की नागरिक स्वाधीनता की रक्षा ही करने जा रहा है। मैसूर से आए हुए मेरे मित्र ने प्रधान मंत्री के नेतृत्व में बनी वर्तमान सरकार के विरुद्ध अत्याचार आदि के जो शब्द प्रयुक्त किए हैं, वे कदापि उचित नहीं हैं। यह विधेयक सरकार की नीति के ही अनकल और विरोधी दल वालों को भी इसके नियमित होन आदि की प्राविधिक आधार संबंधी भारी आपत्तियां न करनी चाहिए थीं यह विधेयक तो जनता को

[डा० पी० एस० देशमुख]

और भी सुविधाएं दे रहा है और कोई विशेष शक्ति हाथ में न लेकर विधि को और उदार बना रहा है। निवारक निरोध के मामलों में यत्र-तत्र कुछ त्रुटि हो सकती है, पर वर्तमान स्थिति में ऐसी क्रमशः उदार होती जाने वाली विधि संविधि-पुस्तक में अवश्य होनी चाहिए। यह विरोधी दल या विशेष गुटों के आचरण पर भी निर्भर होगा कि देश में यह विधि आवश्यक है या नहीं। प्रत्येक राज्य सरकार द्वारा ऐसी विधि की आवश्यकता मानने पर केन्द्र को यह विधि जारी रखनी पड़ रही है। सरकार आवश्यकता न रहने पर इसे एक भी दिन के लिए न बढ़ाएगी। इसके बने रहने पर भी किसी व्यक्ति द्वारा वैसा आचरण न होने पर इसे व्यर्थ क्यों प्रवर्तित किया जाएगा। मैसूर के माननीय मित्र ने परिचालन की बात कही, पर वर्तमान विधेयक से कहीं कठोर निवारक निरोध विधि के विद्यमान होने पर भी अभी ६ महीने पहले ही जनता ने कांग्रेस को भारी बहुमत से चुना है। (अंतर्बाधाएं) यदि उधर के सदस्य अपना बतवि ठीक रखेंगे, तो यह और भी उदारता से प्रयुक्त होगा।

उपाध्यक्ष महोदय : उनके बतवि का बारबार निर्देश ठीक नहीं क्योंकि विधेयक पूरे देश के लिए है, यहां के सदस्यों के लिए नहीं। एक बात और किसी सदस्य को निरर्थक अंतर्बाधा देने का भी अधिकार नहीं है।

डा० पी० एस० देशमुख : यदि मैंने उनको असंतुष्ट किया है तो मैं अपने शब्द वापस लेता हूं। तो हाल में हुए चुनावों का प्रतिफल ही परिचालन के पक्ष में दिए गए तर्कों का प्रत्यक्ष उत्तर है। लक्ष्यों और हेतुओं के विवरण में ही इस विधेयक का उद्देश्य स्पष्ट कर दिया गया है। जिला मजिस्ट्रटों को इस के अधीन आदेश निकालने के बाद राज्य सरकारों को तत्काल सूचना देनी होगी और इस विधेयक में केन्द्र द्वारा निकट संपर्क बनाए रखने का भी उपबंध है। इस प्रकार प्रत्येक मामले का पूरा पूरा अधीक्षण होगा। दूसरे धारा १३ के अधीन अपने कर्तव्य का उचित पालन करने में केंद्रीय सरकार को समर्थ बनाने के लिए उसे प्रत्येक आदेश की प्रतिलिपि मिलती रहेगी। तीसरी सुविधा संबंधित व्यक्ति की इच्छा पर ही परामर्शदाता बोर्ड द्वारा उसकी बात सुने जाने के संबंध में दी गई है। फिर खंड ७ में निरोध की एक अधिकतम समयावधि रख दी गई है। इस प्रकार प्रत्येक प्रकार से पुराने उपबंधों को उदार बनाने की ही चेष्टा की गई है। और वस्तुतः प्रवर-समिति के लिये भी छोटी मोटी बातों को छोड़ विशेष संशोधन की गुंजाइश नहीं है। हमारे यहां ऐसा विधान आवश्यक है। कांग्रेस ने स्वाधीनता प्राप्त की, इतना महान् संविधान बनाया और विभागों में अक्षमता के कारण कहीं कुछ त्रुटि भले रह जाए, पर प्रत्येक विद्वान् व्यक्ति पं० नेहरू से सहानुभूति रखेगा। ऐसे विशाल देश में यदि प्रस्तावक मंत्री महोदय द्वारा बताई गई संख्या में लोग नजरबंद हैं, तो यह सरकार द्वारा संयम से किये गये इसके प्रयोग का ही उदाहरण है। देश में अव्यवस्था और अशांति के पोषक गुटों के होते हुए भी ऐसा हो सकना निश्चय ही सरकार के लिये श्रेय की बात है।

फिर आश्वासन भी दिया जा रहा है कि इसका कम से कम और परिस्थिति बिगड़ने पर ही उपयोग किया जाएगा। यह न केवल चोरबाजारियों या राजनीतिक लाभ उठाने वालों पर ही लागू होता है बल्कि सौराष्ट्र और राजस्थान की भांति के बड़े-बड़े डाकुओं और हत्यारों पर भी यह लागू होता है, और इसका यहां कोई विरोध न करेगा। राजनीतिक मत-प्रकाशन के विरुद्ध इसके उपयोग न होने के संबंध में माननीय मंत्री

के आश्वासन का विश्वास करना चाहिए। और मेरी समझ से किसी भी दूसरे देश में इतना अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य नहीं है। यह विधेयक तो परिस्थितियों और देश के नागरिकों के आचरण पर ही निर्भर रहेगा। यही बात दो वर्षों की अवधि के विषय में भी कही जा सकती है क्योंकि एक सुझाव आया था कि नए सत्र में इसे फिर दुहराया जाए। परंतु यह तो हमारे मित्रों को इसी प्रकार की कूट प्रणालियां अपनाने का ही अवसर दे देगा। उधर दो वर्षों के काल में हमें पता चल जाएगा कि देश इसे चाहता है या नहीं।

१२ मध्यान्ह

इस विषय के समवर्ती सूची में रहने से यदि राज्य सरकारें अलग अलग विधान बनातीं तो एकरूपता न रहती और विरोधी दल वालों को ही परेशानी रहती, अतः कम से कम इस बात का तो सभी स्वागत करेंगे। हमें अपने स्वाधीनता को गंभीरता के साथ समझते हुए सरकार को यथावश्यक सहयोग देना चाहिये और व्यवस्था बनाए रखने के लिए रचनात्मक प्रयत्न करने चाहिए। अतः देश के आकार, हमारे कुछ लोगों के आचरण और मौलिक अधिकारों की सुरक्षा के लिए ऐसा अस्थायी विधान आवश्यक है। मैं इसके प्रवर-समिति को निर्देश किये जाने का प्रस्ताव करता हूं।

उपाध्यक्ष महोदय : मैं प्रस्ताव सदन के सामने रखते समय अनिच्छा प्रकट करने वाले लोगों के नाम छोड़े दे रहा हूं। राज्य-परिषद् के नाम तो जोड़े ही जाएंगे, इस सदन के भी कुछ नाम पीछे जोड़े जा सकेंगे।

प्रस्ताव प्रस्तुत हुआ।

"विधेयक को·····सदस्यों से बनी सदनों की संयुक्त समिति को निर्देश किया जाए; इस सदन के २३ सदस्य, नामतः ——

श्री एम० अनंतशयनम् आयगर, श्री टी० सुब्रह्मण्यम, श्री बी० जी० मेहता, श्री एन० पी० नथवानी, श्री जो० एस० आल्तेकर, श्री एच० वी० पाट-स्कर, श्री वी० शिवा राव, श्री ए० एम० टामस, पं० अलगूराय शास्त्री, पं० बालकृष्ण शर्मा, श्री टी० एन० सिंह, श्री फीरोज गांधी, श्री ए० पी० सिन्हा, श्री एल० एन० मिश्र, पं० एल० के० मैत्रा, श्री सैयद अहमद, श्री बी० के० दास, श्री एच० सी० हेडा, श्री डी० के० बरुआ श्री जयपाल सिंह, श्री जसबंत राज, डा० के० एन० काटजू, और प्रस्तावक और ··· परिषद् के सदस्य ;

कि यह सदन परिषद् से भी संयुक्तसमिति में सम्मिलित होने का तथा संयुक्तसमिति के लिए सदस्यों को नियुक्त करने का अनुरोध करता है;

कि संयुक्त समिति की बैठक के लिए गणपूर्ति···होगी ;

कि संयुक्त समिति··· तक अपना प्रतिवेदन इस सदन के पास प्रेषित कर देगी।"

अभी २३ सदस्य हैं। सामान्यतः अनुपात २:१ रहेगा। अभी पता नहीं कि अधिकाधिक कितने सदस्य होंगे। पूरे सदन तक की समिति बन सकती है। मैं अंत में कुल संख्या तथा गणपूर्ति संख्या बता दूंगा। सरदार हुक्म सिंह भी अपना प्रस्ताव रख दें, उसके पिछले भाग पर अर्थात् पुराने अधिनियम में संशोधन रखने के संबंध में मैं बाद में निर्णय दे दूंगा।

सरदार हुक्म सिंह : मैं प्रस्ताव करता हूं कि :

"विधेयक को (मेरे प्रस्ताव के पिछले अंश के निकाल दिए जाने पर सम्मिलित होने की इच्छा न रखने वाले सदस्यों को छोड़ और प्रस्तावक के

[सरदार हुक्मसिंह]

नाते मुझे मिला कर तथा डा० देशमुख द्वारा प्रस्तावित सभी सदस्यों)··से गठित एक प्रवर समिति को सौंपा जाए तथा प्रवर-समिति को वर्तमान विधेयक में संशोधित न की जानेवाली १९५० के अधिनियम की धाराओं के संशोधनों पर भी विचार करने के बाद अपना प्रतिवेदन २५ जुलाई १९५२ तक उपस्थित करनेका अनुदेश दिया जाए।"

पिछले अंश के संबंध में डा० मुखर्जी तथा एक अन्य माननीय सदस्य ने प्रमाण उद्धृत किए हैं, यद्यपि माननीय उपाध्यक्ष महोदय ने अभी अंतिम निर्णय नहीं दिया है। यदि यह समाप्त होने वाले विधेयक की अवधि बढ़ाने वाला विधेयक है, तो अजमेर मेरवाड़ा अधिनियम के संबंध में अध्यक्ष महोदय के निर्णय के अनुसार इस में अन्य धाराओं के संशोधन नहीं आने चाहिए। पर तर्क यह दिया जा रहा है कि यह वैसा विधेयक नहीं है। उस दशा में पूरे अधिनियम में हमारे संशोधन माने जाने चाहिए। संसद् के पास प्रवर-समिति को कुछ भी अनुदेश देने की पूरी शक्ति है। दूसरे यह अत्यंत विस्तृत क्षेत्र वाला और विवादग्रस्त विधेयक है। जैसा एक माननीय मित्र ने कहा कि यह कुल १ प्रति शत लोगों पर प्रभाव डालेगा, परंतु ऐसे बंधन लगाते समय हमें पूरा ध्यान रखना चाहिए। और यदि प्रवर-समिति को इस संबंध में स्पष्ट अनुदेश न दिए जाएंगे, तो वे संभवतः अपने क्षेत्र को सीमित समझेंगे, अतः यह स्पस्ट कर देना चाहिए कि उन्हें संशोधनों पर भी विचार करने का अधिकार है। संसद् इसके लिए समर्थ है।

उपाध्यक्ष महोदय : क्या इसके लिए कोई पूर्वदृष्टांत है या प्रवर-समिति को अनुदेश देने के लिए कोई उपबंध है ? इससे तो अप्रत्यक्षतः संसद् को पूरे अधिनियम पर विचार करने का अवसर मिल जाएगा। क्या विधेयक पुरःस्थापित होने मात्र से ही संसद् को उसके क्षेत्र से बाहर तक की बातों पर विचार करने का अधिकार मिल जाता है ? क्या एक धारा में संशोधन होने से ही संसद् को शेष धाराओं में भी संशोधन करने का अधिकार मिल जाएगा ?

डा० एस० पी० मुखर्जी : हमारे प्रक्रिया-नियम ९७ (ख) (३) के अनुसार प्रवर-समिति के प्रतिवेदन के पश्चात् विधेयक में कुछ विशेष या अतिरिक्त उपबंध करने के लिए उसे फिर वापस भेजा जा सकता है, अतः प्रवर-समिति को अनुदेश देने का अधिकार सदन को नियमानुसार ही मिला हुआ है।

श्री एन० सी० चटर्जी : अध्याय १० में सार्वजनिक विधेयकों के पारण के संबंध में समिति को दिए जाने वाले दो प्रकार के अनुदेशों का वर्णन है— अनुमतियोग्य और नियोगीय। पहले साधारण प्रकार के अनुदेशों से समिति को एक विधेयक को दो में बांट देने, दो विधेयकों को एक में समेटने और उसके क्षेत्र को बढ़ा देने के अधिकार मिलते हैं। इस प्रकार सदन समिति को वह शक्ति दे सकता है, जो अन्यथा उसके पास नहीं थी।

डा० एस० पी० मुखर्जी : ब्रिटेन की लोक-सभा के स्थायी-आदेश नियम ४० के अनुसार समिति को विधेयक का क्षेत्र बदलने के लिए उसका शीर्ष नाम तक बदलने की शक्ति प्राप्त है।

उपाध्यक्ष महोदय : ये प्रक्रिया की बातें हैं। पर प्रश्न यह है कि क्या विधेयक के प्रस्तावक की स्वीकृति के बिना उसका क्षेत्र बढ़ाने के लिए अनुदेश दिया जा सकता है ?

डा० एस० पी० मुखर्जी : प्रस्तावक भले ही मंत्री हो, उसे सदन का निर्णय मानना होगा।

डा० काटजू : हमारी परिस्थितियां इंगलैंड से भिन्न होने के कारण मे के ग्रंथ के उद्धरण हमारे ऊपर लादना ठीक नहीं। हमें तो अपने ही प्रक्रिया-नियमों पर अवलंबित होना होगा, और उनमें विधेयक के क्षेत्र से बाहर संशोधनों की कोई गुंजाइश नहीं है। प्रस्तुत विधेयक में कुल ४ खंड हैं और यह चालू अधिनियम का संशोधक विधेयक है और साथ ही यह तिथि ३१ दिसम्बर, १९५४ तक बढ़ा रहा है। इतने में संशोधन रखे जा सकते हैं, पर नियम १०० के अनुसार विधेयक के क्षेत्र से बाहर नहीं जाया जा सकता।

उपाध्यक्ष महोदय : उसी के लिए मैं प्रमाण मांग रहा था और मे के ग्रंथ का उद्धरण दिया गया है। पर अब एक प्रश्न और है कि क्या विधेयक के प्रस्तावक की स्वीकृति के बिना संसद् भी उसमें बाधा दे सकती है या नहीं ?

डा० पी० एस० देशमुख : मेरी समझ से सरदार हुक्म सिंह का प्रस्ताव अनियमित है क्योंकि भले ही संसद् सर्वप्रभुत्व संपन्न हो, किसी दंड प्रक्रिया सहिता में एक संशोधन करने का अर्थ यह नहीं कि संसद् पूरी संहिता में ही संशोधन करने लग जाए।

उपाध्यक्ष महोदय : प्रश्न यह है कि यदि संसद् बहुमत से चाहे तो क्या विधेयक का क्षेत्र बढ़ा सकती है। वस्तुतः प्रभारी मंत्री जी इसके लिये तैयार नहीं हैं।

श्री सिंहासन सिंह : एक औचित्य प्रश्न पर। नियम ७६ के अनुसार प्रवर-समिति को निर्देश का प्रस्ताव प्रभारी सदस्य के अतिरिक्त और कोई नही रख सकता, अतः ये दोनों प्रस्ताव अनियमित हैं।

उपाध्यक्ष महोदय : औचित्य प्रश्न इसलिये नहीं है कि यह प्रस्ताव प्रभारी मंत्री के विचार प्रस्ताव में संशोधन के रूप में रखे गय हैं।

श्री पोकर साहेब : एक औचित्य प्रश्न पर। अपने नियमों के स्पष्ट न होने पर ही 'मे' के ग्रंथ या ब्रिटेन की लोक सभा के उद्धरण माने जा सकते हैं। पर संशोधनों के सम्बन्धनें जब हमारा नियम १००, उपनियम (१) स्पष्ट कर देता है कि संबद्ध विषय या विधेयक के क्षेत्र से बाहर के संशोधन न रखे जाय, तो निश्चय ही सदन को कोई अधिकार नहीं कि वह प्रवर समिति को वैसे अनुदेश दे सके।

उपाध्यक्ष महोदय : अध्यक्ष नियमों का निलंबन, आविष्कार और परिष्कार कर सकता है। प्रश्न यह है कि क्या एक धारा का संशोधन होने पर हम पूरे अधिनियम को ले सकते हैं ? क्या संसद् चाहे तो प्रभारी मंत्री की अनिच्छा पर भी विधेयक का क्षेत्र बढ़ा सकती है ?

पंडित ठाकुर दास भार्गव (गुड़गांव) : प्रस्ताव एक बार सदन के सम्मुख आ जाने पर सदन की संपत्ति हो जाता है, प्रस्तावक की संपत्ति नहीं रहता और सदन जो चाहे अनुदेश दे सकता है। और प्रस्तावक की इच्छा के विरुद्ध कार्य होने पर वह उसे सदन के सम्मुख मतदान आदि के लिए प्रस्तुत ही न करेगा। स्पष्ट ही कोई दूसरा यह काम नहीं कर सकता। वास्तविक प्रश्न यह है कि इस विधेयक में ऐसी क्या बात है, जो इस समय इसका क्षेत्र बढ़ाने की मांग की जा रही है।

उपाध्यक्ष महोदय : प्रश्न यही है कि क्या प्रस्तावक की सहमती के बिना संसद् विधेयक का क्षेत्र बढ़ा सकती है। यह कठिनाई भी है कि तृतीय वाचन के समय प्रस्तावक या उनकी ओर से किसी दूसरे

[अध्यक्ष महोदय]

मंत्री के सिवा यह किसी व्यक्ति द्वारा प्रस्तुत नहीं किया जा सकता । अस्तु, प्रस्ताव औपचारिक रूप में सदन के सामने है, इस पर चर्चा होने दी जाए ।

सरदार हुक्म सिंह : माननीय मंत्री ने कहा कि हमारी अपेक्षा इंगलैंड और अमरीका में लोग कानून अधिक मानते हैं, पर तथ्यतः देखा जाए तो बात उलटी ही है । फिर भी दूसरे देशों में ऐसे विधान संकट काल में ही बनते हैं, जब कि हम साधारण काल में भी इसे बनाने जा रहे हैं । यह भी कहा जाता है कि यह कुल एक प्रतिशत लोगों पर ही प्रभाव डालेगा, पर यह और भी खेद की बात है कि इतने भारी समुदाय की स्वाधीनता की इतने थोड़े समुदाय से रक्षा करने के लिए हमें ऐसा विधान संविधि-पुस्तक में रखना पड़े । तब तो हमारी दंड संहिता ही काफ़ी रहेगी । विश्वास विश्वास से ही पैदा होता है । आशा है, माननीय मंत्री जनसाधारण का विश्वास करेंगे । संविधान सभा ने संविधान में इसके लिए उपबंध रख कर उचित ही किया, पर इसका अर्थ यह नहीं कि संसद् के लिए यह विधान बनाना अनिवार्य हो जाए । आंकड़े देकर यह भी बताया गया था कि वस्तुतः नजरबंद लोगों की संख्या बहुत ही कम है । तब तो और भी सरलता से उन मामलों को साधारण-विधि के अधीन निपटाया जा सकता है । यह इंगलैंड की विधि के समान ही बनाया गया है और वहां गृह सचिव को प्रत्येक मामले को देखना होता है । मैं मानता हूं कि इंगलैंड हमारी अपेक्षा छोटा देश है । परन्तु हमें भी मजिस्ट्रेटों को विशाल शक्ति देते समय कुछ सुरक्षायें करनी पड़ेगी, जिससे निर्दोश व्यक्तियों को तंग न किया जा सके । मजिस्ट्रेटों के व्यवहार के आधार पर हम कह सकते हैं कि वे अपने क्षेत्र में अपना एक छत्र राज्य समझते हैं । कभी-कभी तो बदला लेने के ही लिए वे लोगों को तंग करते हैं । अभी दिल्ली में एल० एल० बी० के एक छात्र फीरोजपुर से निकाले गए एक ८ महीने पुराने वारंट पर उस दशा में गिरफ्तार किया गया, जब वह परिक्षा में तीन प्रश्नपत्रों में बैठ चुका था और केवल दो पर्चे शेष रह गये थे । जब ८ महीने कुछ नहीं हुआ, तो दो दिन में ही राज्य की सुरक्षा के लिए ऐसा क्या खतरा खड़ा हो गया था ? एक दूसरे मामले में एक सतबीर सिंह नामक लड़के के विरुद्ध १९५० में वारंट निकाला गया था, जो १९५२ तक निलंबित रहा । राज्य की सुरक्षा के लिए घातक होने के नाते निकाले गए ये वारंट दूसरे लोगों के मामलों में तो वापस ले लिए गए, पर मेरे कहने पर भी जब तक उस मजिस्ट्रेट का तबादला न हो गया, वह वारंट वापस न लिया गया ।

राज्य सरकारें, परामर्शदाता बोर्ड और उच्च न्यायालय तक इन मामलों में कुछ नहीं कर सकते, क्योंकि यह संतोष तो मजिस्ट्रेट को करना है कि संबंधित व्यक्ति की कार्य-वाहियां राज्य की सुरक्षा के लिए घातक नहीं हैं ।

ऐसे अनेकों दृष्टांत दिए जा सकते हैं । और भी कारण हैं । कभी-कभी सत्तासीन दल को सशक्त रखने के लिए, सदस्यों पर दबाव डालने के लिए और और दल को लड़खड़ाने से बचाने के लिए भी ये सावधानियां बरती जाती हैं और तभी निकाले जाने के बाद भी वारंट महीनों तक यों ही पड़े रहते हैं और अनेकों लोगों को गिरफ्तार किया जाता है । निर्दोष लोगों को बचाने के लिए हमें विधि के ऐसे दुरुपयोग पर रोक लगानी होगी ।

यह मान भी लिया जाए कि सरकार को अपराध संपन्न होने के पहले गिरफ्तारी

करने की अनुमति मिलनी चाहिए, तब भी इसमें भेदभाव की गुंजाइश रहेगी। अतः गिरफ्तारी के बाद पूरी-पूरी जांच का उपबंध होना चाहिए और परामर्शदाता बोर्ड को न्यायालय की पूरी शक्ति मिलनी चाहिए। वह नियमित न्यायालय न भी बन जाए, पर वकील, साक्ष्य और जिरह की गुंजाइश तो होनी ही चाहिए। नजरबंद व्यक्ति आगे और कुछ उपद्रव नहीं कर सकता, पर उसे मजिस्ट्रेटों द्वारा व्यर्थ, साभिप्राय, या बदले की भावना से तंग न होने दिया जाए। मजिस्ट्रेटों को भी तो दूसरे लोगों से ही सूचना प्राप्त होती है। फिर इन पूर्वसूचनाओं को निकालने तक में भी संभवतः कोई ध्यान नहीं देता, क्योंकि बिलकुल उसी प्रकार की प्रतिलिपियों द्वारा कई लोगों को गिरफ्तार किया जाता है। दिल्ली में श्री देशपांडे के ही मामले में तीन या पांच आदमियों को उसी एक सभा में एक ही समय सभापतित्व करने के लिए दोषी ठहराया गया था। ऐसे मामलों को देखते हुए परामर्शदाता बोर्ड की शक्ति बढ़ानी होगी। उसे सरकार को प्राप्त सारी की सारी सूचना मिलनी चाहिए। लोकहित को खतरे में डालने वाली विश्वसनीय सूचना के प्रकट हो जाने के भय को तो परामर्शदाता बोर्ड भी समझेगा, पर वकील, जिरह और साक्ष्य की व्यवस्था करके नजरबंद व्यक्ति को अपनी सफाई के लिए अवसर तो मिलना ही चाहिए।

प्रवर-समिति को निर्देश करने की बात तो माननीय गृह मंत्री ने भी मान ली है, मेरा निवेदन यही है कि इस सर्वप्रभुत्वसंपन्न संसद् द्वारा प्रवर-समिति को अनुदेश दिए जाएं। संसद् चाहे तो दंड संहिता की एक धारा के संशोधन के समय सारी संहिता को संशोधित कर सकती है। सर्वप्रभुत्वसंपन्न होने के नाते यह सब कुछ कर सकती है। पर हमें भरोसा होना चाहिए कि यह जो कुछ करेगी, उत्तरदायित्वपूर्ण रूप में ही करेगी।

उपाध्यक्ष महोदय : इस प्रस्ताव को रखने के पहले मुझे डा० पी० एस० देशमुख वाले प्रस्ताव में निम्न बात और जोड़नी है :

> "कि अन्य विषयों में उन भेदों और रूपांतरों के साथ, जो अध्यक्ष करना चाहें, इस सदन के संसदीय समितियों संबंधी नियम लागू होंगे।"

दोनों सदनों की संयुक्त बैठक में अध्यक्ष सभापति होता है और यह संयुक्त समिति उसी का लघुरूप है, अतः अध्यक्ष को प्रक्रिया में उपयुक्त संशोधन करने की शक्ति दी गई है। अब मैं सरदार हुक्म सिंह का प्रस्ताव उपस्थित करता हूं।

उपाध्यक्ष महोदय : संशोधन प्रस्तुत हुआ :

> "विधेयक को श्री एम० ए० आयंगर, श्री टी० सुब्रह्मण्म्, श्री बी० जी० मेहता, श्री एन० पी० नथवानी, श्रीजी०एस० आल्तेकर, श्री एच० वी० पाटस्कर, श्री बी०शिवा राव, श्री ए० एम० टामस, श्री अलगूराय शास्त्री, पं० बालकृष्ण शर्मा, श्री टी० एन० सिंह, श्री फीरोज गांधी, श्री ए० पी०सिन्हा, श्री एल० एन० मिश्र, पं० एल० के० मैत्रा, श्री सैय्यद अहमद, श्री बी० के० दास, श्री एच० सी० हेडा, श्री डी० के० बरुआ, डा० एस० पी० मुखर्जी, श्री एन सी० चटर्जी, श्री जयपाल सिंह, श्री जसवंत राज, श्री सारंगधर दास, श्री दामोदर मेनन, डा० के० एन० काटजू और प्रस्तावक से बनी एक प्रवर समिति को सौंपा जाए तथा प्रवर-समिति को १९५२ के वर्तमान विधेयक में संशोधित न की जाने वाली १९५०

[उपाध्यक्ष महोदय]

के अधिनियम की धाराओं के संशोधनों पर भी विचार करने के बाद अपना प्रतिवेदन २५ जुलाई, १९५२ तक उपस्थित करने का अनुदेश दिया जाए।"

प्रस्तुत प्रस्ताव में ये संशोधन हैं। मैंने अभी मूल अधिनियम के संशोधनों को नियमित नहीं ठहराया। क्या माननीय मंत्री को कुछ कहना है।

डा० काटजू : तब क्या आप उनको नियमित ठहराना चाहते हैं ? क्योंकि मेरी स्थिति यह है। माननीय सदस्य किसी भी आधार पर विचार-प्रस्ताव को ठुकरा सकते हैं। एक आधार यह भी हो सकता है कि यह विधेयक भारी सुधार नहीं करता। जब तक प्रक्रिया-नियम विद्यमान हैं, तब तक नियम १०० के रहते हुए प्रवर-समिति को विधेयक से आगे जाने का अनुदेश नहीं दिया जा सकता। आपने अध्यक्ष द्वारा प्रक्रिया-नियमों के निलंबन की बात कही थी, पर मेरे विचार से नियम २८० में यह बताया गया है कि अध्यक्ष की अनुमति से किसी प्रस्ताव विशेष के बारे में किसी नियम के लागू होने का निलंबन करने के लिए एक प्रस्ताव रखा जा सकता है, और उस प्रस्ताव के पारित होने पर वह नियम कुछ समय के लिए निलंबित रह सकता है। मैं नहीं समझता कि नियम १०० के विषय में यह नियम लागू हो सकेगा। अभी-अभी संभवतः दंड प्रक्रिया संहिता के संशोधन विधेयक में अब अवैध जमाव के विसर्जन के लिए स्थल सेना के साथ-साथ वायु-सेना और नौ सेना के उपयोग का भी अधिकार मजिस्ट्रेट को दिया गया था, तो कई संशोधन आए थे कि राष्ट्रपति आयात घोषित करे, जिला मजिस्ट्रेट से परामर्श किया जाए आदि। अध्यक्ष महोदय ने उन सब को अनियमित घोषित कर दिया। प्रवर-समिति भी अवसर मिलने पर यही करती, क्योंकि विधेयक के क्षेत्र से बाहर जाना अनुमतियोग्य नहीं है। यह निश्चय ही सदन के लिए और उससे भी अधिक प्रवर-समिति के लिए बंधनकारी है। अतः प्रवर-समिति को विधेयक से बाहर जाने है की अनुमति देने वाला यह संशोधन अनियमित है।

उपाध्यक्ष महोदय : अब सचिव एक संदेश पढ़ेंगे।

राज्य परिषद से प्राप्त संदेश

सचिव : श्रीमान, मुझे राज्य परिषद् के सचिव से प्राप्त निम्न संदेश को प्रतिवेदित करना है :

"राज्य-परिषद् के क्रिया तथा कार्य-संचालन के नियमों के नियम १६२ के उपनियम (५) के उपबंधों के अनुसार, मुझे विनियोजन (संख्या २) विधेयक, १९५२ को वापस करने का निर्देश मिला है, जो लोकसभा द्वारा अपनी ४ जुलाई, १९५२ की बैठक में पारित किया गया था और राज्य परिषद् के पास अपनी सिफारिशों के लिये प्रेषित किया गया था। परिषद् को कथित विधेयक के विषय में लोक-सभा के निकट कोई सिफारिश नहीं करनी है।"

इसके पश्चात् सदन की बैठक साढ़े तीन बजे तक के लिए स्थगित हो गई।

मध्याह्न भोजन के पश्चात् सदन की बैठक साढ़े तीन बजे पुनः समवत हुई।

[अध्यक्ष महोदय अध्यक्ष-पद पर आसीन थे]

निवारक निरोध (द्वितीय संशोधन) विधेयक-क्रमागत

अध्यक्ष महोदय : अब सदन निवारक निरोध विधेयक पर और आगे विचार करेगा।

श्री गाडगिल : आज सबेरे रखे गये प्रवर-समिति को निर्देश के प्रस्तावों को लेकर मेरे मन में भारी विभ्रम पैदा हो गया था। मैंने अपने आप से चार प्रश्न पूछे। क्या यह विधान हमारे संविधान के अनुकूल है? क्या इसकी आवश्यकता है? यदि है तो क्या इसके द्वारा की जाने वाली शक्तियां उचित, पर्याप्त या अधिक हैं? क्या दी गई शक्तियों के दुरुपयोग को रोकने के लिये सुरक्षाय रखी गई हैं?

उपाध्यक्ष महोदय के एक निर्णय के अनुसार मूल अधिनियम के सिद्धांतों की चर्चा भी प्रसंगोचित मान ली गई है, अत: सांविधानिक स्थिति का संक्षिप्त निर्देश करते हुए मुझे प्रजातंत्र और स्वाधीनता के नाम पर उठाई गई आवाजों के विषय में कुछ कहना है। हम कांग्रेसियों को भी ऐसे विधान की आवश्यकता ने खेद पहुंचाया है। यह ठीक नहीं कि युद्धकाल को छोड़ शांतिकाल में दुनिया के प्रजातंत्रों में ऐसे विधान नहीं होते। आयर में ही १९३९ में युद्ध या आंतरिक विद्रोह न होते हुए भी दंगों को रोकने के लिये संसद् द्वारा निवारक विधान पारित किया गया था। अपनी नवप्राप्त आजादी को दृढ़ करने के लिये और अपनी अन्य विषम परिस्थितियों के कारण हमारे लिये संविधान में इस विषय का उपबंध करना आवश्यक हो गया और संसद् को यह शक्ति मिली। एक अंग्रेज विद्वान का कहना है कि संसद् की भूल का सुधार न्यायपालिका द्वारा नहीं, बल्कि वेगवती राष्ट्रभक्ति कर्त्तव्य भावना और अनुभव की लहरों के सहारे स्वयं संसद् द्वारा किया जाता है। अत: यदि वर्तमान संसद् इस विधेयक को पारित कर कुछ भूल करती है, तो आगामी संसद् या परिस्थिति को समझ कर स्वय ही संसद् वह भूल सुधार लेगी। सरकार संसद् को प्राप्त शक्ति का उपयोग कर सकती है। यदि यह विधान न बनाया गया होता, तो प्रतिफल क्या होते — इस प्रश्न से ही इस विधान के औचित्य का उत्तर मिल जायेगा। मेरे विचार से तो इस विधान को न बनाना सरकार का एक अबुद्धिमत्तापूर्ण कार्य ही होता। 'जांच के बाद निर्णय' का नारा हमारी आज की असामान्य परिस्थिति के लिये उचित या पर्याप्त नहीं है।

अब इसकी आवश्यकता को लें। जनवरी, १९५० में मूल अधिनियम के पारित होते समय डा० मुखर्जी मंत्रि-परिषद् में थे और इस विधान के पारित हो जाने के लिये बड़े आतुर थे।

डा० एस० पी० मुखर्जी: बात गढ़ी जा रही है। निर्णय मंत्रि-परिषद् का था, मैं विशेष आतुर न था।

श्री गाडगिल : विशेषत: पश्चिमी बंगाल के लिये सदन ने रविवार को भी समवेत होकर उस विधेयक को पारित किया था। और आज डा० मुखर्जी सदन की इस रुढ़ि को ही तोड़कर कि विचार-प्रस्ताव के समम कोई विरोध न किया जाय, इस विधेयक में पग पग पर बाधा डालने को तुले हुए प्रतीत होते हैं। उनको बंगाल का बहुत अधिक ज्ञान है। आज ही होमा ने अपने पत्र में लिखा है कि प्रदर्शनकारियों ने चाय-रसगुल्लों की दुकानें न लूट बीड़ी-पान की ही दुकानें लूटीं और उनके फोटो देख कर ही यह पता चलता

[श्री गाडगिल]

हैं कि उनमें भुखमरा कोई नहीं है। तो प्रत्येक समझदार आदमी जान जायगा कि इन प्रदर्शनों के पीछे कोई गहरा रहस्य है। जब केन्द्रीय सरकार ने बृहत्तर कलकत्ते की खाद्य-रसद सम्बन्धी अपने वचन अंशतः पूरे किये हैं, तो ऐसे उपद्रव राज्य की दृढ़ता और सुरक्षा और व्यवस्था के लिये विभीषिका नहो तो और क्या हैं। यदि गाप इसे सह लेते हैं और गोलीकांड आदि की खिल्ली उड़ाते हैं, तो आप एक उत्तरदायी नागरिक के नाते समुदाय की कोई सेवा नहीं करते।

अब रांतवार स्थिति का सिंहावलोकन करें। सौराष्ट्र में सामान्य विधि के अनुसार भूतपूर्व शासकों आदि पर अभियोग चलाना असंभव था, पर इस विधि का प्रयोग होते ही भूपत भारतीय सीमा छोड़कर भाग गया और शान्ति स्थापित हो गई। सुना जाता है कि पटियाला संघ में कई थाने उठा लेने पड़े हैं और गांव वाले विस्वेदारों पर धावा बोल रहे हैं या इसका उलटा हो रहा है। क्या यह स्थिति वांछनीय है? बम्बई में केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकार द्वारा खाद्य स्थिति पर सब कुछ किये जाने पर भी भूख-प्रदर्शन हो रहे हैं और अब तो करविधियों का उल्लंघन होने जा रहा है। एक योग्य माली पौदा लगाते समय उसे ठीक से उगने देने के लिये चारों ओर झाड़ी लगा देता है और तने के दृढ़ न हो जाने तक शाखायें नहीं फैलने देता। हमारी स्वाधीनता भी ऐसा ही पौदा है और इसके दृढ़ हो जाने का प्रमाण यही है कि बाहरी आक्रमण के समय प्रत्येक नागरिक इसे व्यक्तिगत खतरा समझे। ऐसे अवसर पर कितने विरोधी दल व्यक्तिगत या दलबंदी की बात छोड़ देश के साथ खड़े होने जा रहे हैं। स्पष्ट ही साम्यवादी तो अंतर्राष्ट्रीय साम्यवाद का स्वप्न देखते हैं। अतः स्वाधीनता का फल चाहने वाले प्रत्येक नागरिक के लिये यही परीक्षा होगी कि देश के खतरे के समय अपने प्राणों की बाजी लगा दे, भले ही वह किसी भी सिद्धांत का समर्थक हो। यह विधेयक जैसा डा० काटजू ने बताया साम्यवादियों या किसी भी दलके विरुद्ध नहीं है। इस विधेयक में वैदेशिक सम्बन्धों, देश की शांति-सुरक्षा या अत्यावश्यक पदार्थों की रसद में बाधक कार्यवाही करने की इच्छा रखने वाले व्यक्ति के नजरबन्द करने का उपबन्ध है। आर्थिक क्षेत्र में हमारी सरकार ने हाल में अवनियंत्रण की ओर सतर्क पग बढ़ाया है। इधर अभी कुछ ही मास पहले मद्रास के मुख्य मंत्री ने वहां गुड़ में मिलाये जाने वाले गोबर की बात कही थी। विशाखापटनम से गुड़ की रसद में देर के भी वृत्तांत मिले हैं, जिससे दाम चढ़ जाते हैं। ऐसी स्थिति में चोरबाजारियों आदि समाजविरोधियों को कुचलने के लिये सरकार को यथेष्ट शक्ति दी जानी चाहिये। ५-६ महीनों से चीन के विशेषतः वहां भ्रष्टाचार बन्द करने के उदाहरण दिये जाते हैं। पर इस विधेयक में हम वैसा कुछ नहीं कर रहे हैं, न चोरबाजारियों को फांसी पर लटका रहे हैं और न उनके कोड़े लगवा रहे हैं। फिर भी प्रारम्भ से ही इस विधेयक का इतना विरोध किया जा रहा है। डा० एस० पी० मुखर्जी से भी मेरा विशेष अनुरोध है कि अपने विरोध को रचनात्मक बना कर कुछ सुझाव सरकार के सामने रखें। माननीय मंत्री निश्चय ही उनको मानेंगे। पर पुरःस्थापन से तृतीय-वाचन तक विरोध करना और 'सदन छोड़-छोड़ चला जाना' प्रजातंत्रीय रीति नहीं है। मैं साम्यवादी मंत्रियों से भी अनुरोध करूंगा कि यहां आकर और संविधान के प्रति शपथ लेने के बाद वे संसदीय प्रक्रिया को अपनाएं। इससे उनको सदन छोड़ चले जाने या

अंतर्बाधायें देने की अपेक्षा कहीं अधिक लाभ होगा ।

एक माननीय सदस्य : क्या यह प्रसंगोचित है ?

अध्यक्ष महोदय : शान्ति, शान्ति । यह मेरा काम है और मैं इसे प्रसंगोचित मानता हूं ।

श्री गाडगिल : मैं चुनाव के समय कही गई बातों को न लूंगा, क्योंकि उस उमय लोग संतुलन खो बैठते हैं । महाराष्ट्र में किसान तथा कामकर दल के एक नेता न तो चुनाव के समय यहां तक कहा था कि कांग्रेस हाई कमानड् और सरकार भूपतों का जत्था है और सत्तासीन होते ही पहला काम वह यही करेंगे कि सभी कांग्रेसियों का सिर काट दें । हर्ष है कि संभवतः इस जनम में तो उन्हें वह अवसर मिलने नहीं जा रहा है । वस्तुतः हम समझते हैं कि शरीर में हृदय की भांति ही समुदाय के जीवन में अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य की स्थिति है, और यदि सरकार इस के विरुद्ध कुछ करेगी तो मैं इसका विरोध करूंगा । पर इस विधयक में विचार या अभिव्यक्ति को नहीं, बल्कि कार्यों और उनके करने के अभिप्राय को ध्यान में रखा गया है ।

तीसरा प्रश्न यह है कि क्या इसमें उपबन्ध अधिक कठोर हो गये हैं ? मझे अखिल भारतीय नागरिक स्वाधीनता परिषद् से जिसने संविधान बनते समय अत्यंत उपयोगी कार्य किया था और संविधान में निवारक निरोध के उपबन्ध का विरोध किया था, एक स्मरण-पत्र मिला है जिसमें बताया गया है कि जांच करने वाली संस्था के ठीक कार्य-निर्वाह के लिये यह अत्यावश्यक है कि उसे पूरे विवरण प्राप्त हों और नज़रबंद के लिये वकील, साक्षी और जिरह का उपबंध हो। सरकार के पास की सारी जानकारी प्राप्त करने का अधिकार परामर्शदाता बोर्ड को मिला ही हुआ है । बात सुने जाने का भी इस विधेयक में उपबन्ध है । पर जिरह आदि के विषय में यह पूरी पूरी जांच नहीं है और सार्वजनिक हित में विश्वसनीय तथ्यों का प्रकट हो जाना मूल अभिप्राय को ही चौपट कर देता है । तीन में से दो बातें तो मान ही ली गई हैं, पर तीसरी का न मानना ही ठीक है ।

४ प०म०

उक्त परिषद् ने श्री राजगोपालाचारी से यह भी मांग की थी कि इन मामलों को राज्यों के गृह मंत्री व्यक्तिगत रूप में देखें । खण्ड ४ में यह उपबन्ध हो गया है कि मजिस्ट्रेट १५ दिन में ही राज्य-सरकार को सूचित कर दे । अब गृह-मंत्री ही नहीं, राज्य की मंत्रि-परिषद् ही इन मामलों को देखेगी । केंद्रीय सरकार के पास भी नजरबंदियों के कारणों के वृत्तांत आयेंगे । इन उपबन्धों द्वारा दुरुपयोग को बचाया जा सकेगा । अतः शांति-व्यवस्था और सारभूत-प्रदायों की सुरक्षा के लिये यह विधान अत्यावश्यक है । हमारे प्रजातंत्रीय ढांचे के विकास की प्रतिरोधक सभी बातों को दबाना ही पड़ेगा ।

प्रत्येक उत्तरदायी व्यक्ति राजनीतिक विचार-धारा में न बह-कर देश की शान्ति व्यवस्था के लिये इसे अत्यावश्यक मानेगा । फिर कुछ व्यक्ति ऐसे हैं, जो परिस्थितियों को बिना विचारे, निवारक निरोध नाम का ही विरोध करेंगे । ऐसे व्यक्ति इस पर मत न दें, या विरोध में मत दें । पर हमें व्यवहारिक व्यक्ति के नाते समझदारी पूर्वक यह सोचना है कि इस विधेयक के विद्यमान होने या न होने पर किस दशा में अत्यंत तीव्र प्रगति हो सकेगी । हमारा देश एक किसान के खेत की भांति सिंचाई के लिये और फसल को पनपाने के लिये क्यारियों में बंटा

(श्री गाडगिल)

हुआ है। वस्तुतः मैं भी निवारक निरोध को अच्छा नहीं समझता और एक वैष्णव को सहसा मांस खिलाया भी नहीं जा सकता। पर डाक्टर द्वारा आवश्यक बताये जाने पर वह उससे क्रमशः खाने लगेगा। प्रगति के लिये हमें पारस्परिक मत-भेद कम कर विश्वास बढ़ाना पड़ेगा। आशा है, हम एक दूसरे की बात को ध्यान से सुनेंगे और तर्क का संतोष तर्क दे कर करेंगे। मुझे एक अंग्रेज संसद्विज्ञ की यह बात जंचती नहीं कि हम भाषणों द्वारा विचार बदल सकते हैं मत नहीं प्राप्त कर सकते। मुझे आशा है कि अब प्रातः काल जैसी बातें न होंगी।

श्री एच० एन० मुखर्जी : आज हम देश के हित और भावी विकास के लिये अत्यंत महत्वपूर्ण विधान पर विचार कर रहे हैं, और अच्छा होता यदि अभी बोलने वाले माननीय सदस्य ने तुच्छ बातों में समय नष्ट न किया होता। आज सवेरे कुछ दुखद घटनायें घटीं, पर उन का मूल हेतु माननीय गृह मंत्री द्वारा प्रस्तुत किया गया यह विधेयक है, जो वचन न निभाने वाली हमारी आदत का प्रतिनिधित्व करता है। निवारक निरोध की प्रजातंत्र-विरोधी भावना का मैं बार बार निर्देश न करूंगा, पर संविधान के प्रति आदर दिखाते हुए मैं कहूंगा कि उस में उपबन्ध होते हुए भी यह कदापि आवश्यक नहीं कि आज पांच वर्ष की स्वाधीनता के बाद भी देश की एकता की रक्षा के लिये और शासन के प्रति जनता में प्रेम पैदा करने के लिये ऐसे विधान का उपयोग किया जाये। यदि हमारे संविधान में निवारक-निरोध जैसी एक ऐसी अनोखी बात है जो दुनियां के किसी प्रजातंत्र देश में नहीं पाई जाती तो हमें उसका न तो गर्व ही होना चाहिये और न बार बार उसका उल्लेख ही करना चाहिये। एक विशेष समय पर कुछ विशेष कारणों से संविधान में यह उपबन्ध रखा भी गया हो, तो भी उस उपबन्ध के प्रजातंत्र विरोधी होने के कारण हमें वह बात बार बार न दुहरानी चाहिए। पूंजीवादी और बुर्जुआ समाज में जनता को संतुष्ट करने के लिये मौलिक अधिकार तो दिये जाते हैं, पर बाद के खंडों द्वारा उनको निस्सार बना दिया जाता है और वे लोग जनता को कुछ सुविधायें देकर भी वास्तविक शक्ति कुछ निहित स्वार्थों के ही हाथ बनी रहने देते हैं। हमारे संविधान में भी अनुच्छेद २१ में व्यक्तिगत स्वातंत्र्य देकर अनुच्छेद २२ में निवारक निरोध की अनुमति दे दी गई है। ऊपर से प्रजातंत्र की डींग हांकने वाले इन पूंजीवादी संविधानों के बारे में मैं मार्क्स के उद्धरण न देकर 'रामसिंह बनाम दिल्ली राज्य' वाले अभियोग में अपने उच्चतम न्यायालय के माननीय न्यायाधीश जस्टिस विवियन बोस का उद्धरण दूंगा। उन्हों ने कहा था : "संविधान द्वारा दिये गये मौलिक अधिकार पूर्ण न होकर सीमित हैं और या तो स्वयं संविधान द्वारा बंधन लगाये गये हैं या संसद् को बंधन लगाने के लिये कार्यपालिका को शक्ति देने का उपबंध किया गया है। परन्तु अधिकार मौलिक हैं, बंधन नहीं, और इस देश के प्रत्येक न्यायालय का यह कर्त्तव्य होना चाहिये कि संसद् या कार्यपालिका संविधान द्वारा रखी गई सीमाओं का अतिक्रमण न कर जायें।" विद्वान् न्यायाधीश की इस उक्ति के प्रकाश में जब हम माननीय मंत्री को बंधनों को ही पूर्ण मानता हुआ देखते हैं, तो यह बात नितांत खतरनाक प्रतीत होने लगती है। निवारक-निरोध के जितने मामले उच्च न्यायालयों या उच्चतम न्यायालय में गये, उन सब में हमारी न्यायपालिका द्वारा प्रकट किये गये विचार सर्व विदित हैं और केवल प्राविधिक कठिनाइयों के ही कारण वह बंदी-प्रत्यक्षीकरण के समग्र आवेदनों में नज़रबन्द

व्यक्तियों के छोड़े जाने का आदेश न दे सकी थी ।

लार्ड बेकन ने ब्रिटेन के न्यायाधीशों को ताज के नीचे रहने वाले शेर बताया था । पर मुझे यह कहते हुए गर्व है कि हमारे न्यायाधीश सरकारी बेंचों के नीचे के शेर नहीं हैं, बल्कि वे स्वतंत्र रूप से हमारे देश की विधि का निर्वचन करते हैं । उनके निर्णयों से स्पष्ट हो गया है कि निवारक निरोध विधि का प्रवर्तन अत्यंत अनुचित रूप में किया गया है ।

अब इस अधिनियम का इतिहास लें । संविधान जनवरी, १९५० में कार्यान्वित हुआ और फ़रवरी, १९५० में सरदार पटेल ने रातों-रात जाग कर इस अधिनियम को पारित करवाया । उनकी चिंता के दो कारण थे । एक तो संविधान के लागू होने के तुरंत पश्चात् उनको ऐसी अप्रिय विधि पारित करवानी पड़ी और दूसरे कलकत्ते में ५०० नज़रबन्दों के आवेदन कलकत्ता उच्च न्यायालय के सामने थे और प्रतीत हो रहा था कि बंदी-प्रत्यक्षीकरण आवेदनों पर न्यायाधीश उनको छोड़ देंगे सरदार पटेल के शब्दों में कलकत्ते की वह विस्फोटात्मक स्थिति उस समय इस विधान के लिये उपयुक्त कारण रही होगी, पर आज इसी बात का दुहराया जाना कहां तक उचित है ? क्या आज भी वैसा आपात है ? सरदार पटेल ने ही स्पष्ट कर दिया था कि यह एक आपात-विधान है और वह १ अप्रैल, १९५१ तक के ही लिये बनाया गया था । फ़रवरी, १९५१ में इसकी अवधि एक वर्ष के लिये बढ़ा दी गई । फिर दुबारा मार्च १९५२ में इसकी अवधि बढ़ाते समय डा० काटजू ने डा० एस० पी० मुखर्जी को वचन दिया था कि लगभग ६ महीने बाद नई संसद् को इस पर पूरा-पूरा विचार करने का अवसर प्रदान किया जायेगा और नई संसद् इसे बढ़ाने या न बढ़ाने के लिये मुक्त होगी । यह इस विधान का इतिहास है । मैं डा० काटजू को चुनौती देता हूं कि वह आंकड़े सामने रख कर यह सिद्ध कर दें कि आज कौन सा आपात चल रहा है । कल उन्हों ने जिस प्रकार के तथ्य रखे थे, उनसे सभी के निकट यह स्पष्ट हो गया कि न तो देश में किसी साम्यवादी उपद्रव की, या आप जो समझते हों, आशंका है और न देश की सुरक्षा को ही कोई ख़तरा है । फिर वह स्थिति क्या है जिस ने इस विधान को आवश्यक बना दिया है ? कल उन्हों ने कुछ और कहा था और आज उन्हों ने साम्यवादी दल के विरुद्ध बहुत कुछ ज़हर उगला है । फिर भी आज तक कांग्रेस के किसी प्रवक्ता ने यहां पर या बाहर यह सिद्ध नहीं किया कि आज कौन सा आपात चल रहा है । यहां पर मेरे लिये अमरीका या ब्रिटेन में जनता को दिये जाने वाले संरक्षण या लिवर्सिज बनाम एंडरसन के अभियोग में लार्ड एटकिन की उक्ति का उद्धरण देना आवश्यक नहीं है, पर मैं यहां पर प्रधान मंत्री के समक्ष पूरी गंभीरता के साथ पूछता हूं कि किस प्रेरणा, भावना या परिस्थिति के वशीभूत हो आप यह विधान बना रहेहैं । इसी प्रकार उस दिन दंड -विधान के संशोधन में असैनिक उपद्रवों को दबाने के लिये वायु-सेना और नौ-सेना के उपयोग करने की शक्ति मांगी गई थी । तो इस सब का अभिप्राय क्या है ? आप बात तो लोक-हितकारी राज्य की करते हैं और इस प्रकार के विधानों द्वारा पुलिस-राज्य जैसी शक्तियां ग्रहण करते जा रहे हैं ।

मित्रवर श्री गाडगिल, और शायद डा० काटजू द्वारा भी, कलकत्ते में ट्रामकारें जलाये जाने की बात कही गई थी । पर 'जुगांतर' जैसे कांग्रेसी समाचार पत्र तक में, जो सदैव साम्यवादियों पर कीचड़ उछालता रहता है, स्थानीय संवाददाता द्वारा लाठी चार्ज, अश्रुगैस और गोली-कांड के विवरण के साथ-साथ फोटो भी दिये गये हैं । इस प्रकार जनता के धैर्य की परीक्षा ली जाती है । और यहां कहा जाता

[श्री एच० एन० मुखर्जी]

है कि कलकत्ता, हैदराबाद, मद्रास आदि के प्रदर्शनकारियों को एक सबक़ सिखा दिया जायेगा। ऐसी बातें सदन में शोभा नहीं देतीं। मैं कितना भी शोर मचा कर दिल्ली में किसी बस को नहीं रोक सकता, न दस-पांच आदमी प्रदर्शन करके यातायात ही बन्द कर सकते हैं। जब तक जनता की प्रदर्शनकारियों के साथ सहानुभूति न हो और वह उनके साथ मिल कर सरकार तक अपनी बात पहुंचाने के लिये तुल न जायें, कुछ नहीं हो सकता। कांग्रेस वाले अपने संघर्ष के दिन याद करें, तो समझ जायेंगे कि बिना जनता के सहयोग के कुछ संभव नहीं है। सरकार द्वारा सर्वत्र होने वाली ज़्यादती ही जनता के इस असंतोष का मूल कारण है। साथ ही वह तो यहां तक समझती है कि यह सरकार देशवासियों के हित तक का पूरा-पूरा ध्यान नहीं रखती। आज प्रात: डा० देशमुख ने तो यहां तक कहा था कि अभी-अभी कांग्रेस ने चुनाव जीता है और उसे जनता का नियोग मिला हुआ है, पर मैं कांग्रेस के किसी भी सदस्य—प्रधान मंत्री तक—को खुली चुनौती देता हूं कि निवारक-निरोध के प्रश्न पर देश के किसी कोने से चुनाव लड़ कर देख लें। अपने परिचित प्रदेशों में चुनाव के अनुभव से मुझे पता है कि कांग्रेस अपने भूत, वर्तमान और भावी कार्य-क्रमों तक को जनता के सामने रखने में सकुचा रही थी। और अब यदि वे इस घातक विधान को पारित करना ही चाहते हैं, तो क्यों नहीं इसे जनमत के लिये परिचालित करने को उद्यत हो जाते? क्या वे देश को या संसद् को यह विश्वास दिला रहे हैं कि देश में भारी ख़तरा है और तुरंत गृह-युद्ध की आशंका है? यदि नहीं तो क्यों इस लज्जास्पद विधान की अवधि बढ़ाकर प्रजातंत्र को कुचला जा रहा है और इस प्रकार की आकस्मिक कालीन और पुलिस-राज्य की शक्तियां क्यों ग्रहण की जा रही हैं?

अब इस विधेयक की मौलिक बुराई की बात छोड़ इसके निष्पादन-को लें। बम्बई उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश ने आत्मा राम के मामले में स्पष्ट ही कहा था कि इन मामलों में बताये गये नज़रबन्दी के कारण नितांत अपर्याप्त और असंतोषजनक होते हैं और सार्वजनिक हित को बिना हानि पहुंचाये ये आधार अपेक्षतया अधिक उपयुक्त और पूर्ण हो सकते हैं। साथ ही उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के उद्गार का उद्धरण मैं पहले ही दे चुका हूं।

नौकरशाही के इन कृत्यों का विवरण देने लगूं, तो बहुत समय लग जायेगा, अत: मैं थोड़े से उदाहरणों द्वारा ही स्पष्ट कर दूंगा कि नज़रबन्दी के ये आधार कितने थोथे होते हैं। चिटगांव शस्त्रागार पर १९३० में क्रांतिकारियों द्वारा किया गया हमला राष्ट्रीय संघर्ष के इतिहास में अमर है, क्योंकि उस दिन बंगाल ने भी अंग्रेज़ी सरकार को दिखा दिया था कि अब उसने कायरता छोड़ वीरता का बाना अपना लिया है। उसमें भाग लेने वाले श्री गणेश घोष को वर्तमान सरकार ने पहले बंगाल-दंड-विधि के अधीन गिरफ्तार किया और बाद में न्यायालय द्वारा उस विधि के अवैध घोषित किये जाने पर उन को निवारक निरोध अधिनियम के अधीन सन् १९३० के उक्त षड्यंत्र में भाग लेने का अभियोग लगा कर नज़रबन्द किया गया। उसी प्रकार १९२६-२७ के मछुआ बाज़ार षड्यंत्र में भाग लेने वाले श्री निरंजन सेन को कुछ दिन पहले उक्त बम-षड्यंत्र में भाग लेने के अपराध पर नज़रबन्द किया गया। डा० काटजू अपनी फाइलों द्वारा इस बात की जांच कर सकते हैं। ब्रिटिश काल में १५ वर्ष जेल भुगतने वाले अब्दुर रज्जाक ख़ां को भी १९३६-३७ में बंगाल में किसान-संगठन करने के अपराध में १९४८ में नज़रबन्द बनाया गया। कानपुर के मज़दूर-

नेता एस० एस० यसुफ़ को 'अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवादी-संगठन' (कौमिन्टर्न) से सम्बन्धित होने के आधार पर १९४८ में बंदी बनाया गया। सभी जानते हैं कि कौमिन्टर्न १९४३ में ही विघटित की जा चुकी है। इसी प्रकार प्रयाग विश्वविद्यालय के प्राध्यापक डा० आशा राम को २९ जनवरी, १९५० को, जब रविवार होने के कारण विश्वविद्यालय बंद था, छात्रों से हड़ताल और प्रदर्शन कराने के अभियोग में पकड़ा गया। ऐसे ही राजनीतिक कार्यकर्ता संतोष चटर्जी को १९५० में ब्रिटिश राष्ट्रमंडल में सम्मिलित होने का विरोध करने के लिये महिलाओं को भड़काने के एक अभियोग में नज़रबन्द किया गया था। वर्तमान संसद् सदस्य श्री तुषार चटर्जी पर एक अभियोग यह भी था कि ११ दिसम्बर, १९४८ को वह बहू बाज़ार स्ट्रीट कलकत्ता में हुई एक सभा में उपस्थित थे, जिसमें बंगाल ट्रेड यूनियम कांग्रेस के अध्यक्ष मृणाल कांति बसु में पूरे-पूरे विश्वास-प्रदर्शन के साथ ही लिप्टन आदि कम्पनियों की हड़तालों का समर्थन किया गया था। बिहार के एक निरक्षर कोयला-मज़दूर पर १९५१ में लड़ाकू साम्यवादी होने का अभियोग लगाया गया था। इस पर उच्चतम न्यायालय के माननीय न्यायाधीश श्री चन्द्रशेखर अय्यर ने कहा था कि 'लड़ाकू' होना कोई दोष नहीं है। इन अभियोगों में लगाये गये इस प्रकार के आरोपों के थोड़े से उदाहरणों द्वारा यह स्पष्ट हो जाता है कि लोगों को ज़बरदस्ती गिरफ्तार कर लेने के लिये नौकरशाही द्वारा कैसे-कैसे अभियोग गढ़े जाते हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि इस अधिनियम को कितने लज्जाजनक रूप में काम में लाया गया है। इधर जेलों की दशा को लें, तो हालत और भी गिरी हुई दिखाई देती है। १९४९ में मैं कलकत्ता प्रेसीडेंसी जेल में था। वहां पर, अलीपुर जेल और डमडम जेल में सशस्त्र संतरियों द्वारा क़ैदियों पर गोलियां बरसाई गईं, जिससे ४ क़ैदी मारे गये और बहुत से घायल हुए। जेल के भीतर शक्ति या अस्त्र कुछ भी क़ैदी के पास नहीं होते और वह इधर-उधर से कुछ उठा कर बुलाई गई सेना से नहीं लड़ सकता। फिर भी पश्चिमी बंगाल, मद्रास और हैदराबाद और दूसरे स्थानों में जेल में क़ैदियों पर गोली कांड के संवाद सुने गये हैं। हैदराबाद में तो राजा राव और रैड्डी को जेल से बाहर कहीं ले जाकर गोली से उड़ा तक दिया गया। ऐसे ही और भी दृष्टांत हैं। कुछ वर्ष पहले सलेम में भी यही हुआ था। यह अमरीकनों द्वारा कोजे द्वीप में की जाने वाली बात की थोड़ी-थोड़ी याद दिला देता है। मैं यह आरोप पूरी गंभीरता से नहीं लगा रहा हूं, पर वैसा करने पर हमारे भी मुंह में अमरीकनों जैसी कालिख पुत जायेगी।

हैदराबाद के विषय में कहा गया था कि वहां जीना दूभर हो गया था और अब जैसे-तैसे शांति स्थापित की गई है। आज सवेरे साम्यवादियों द्वारा हिंसात्याग का भी प्रश्न उठाया गया था। यह निषेधात्मक और अयथार्थ प्रश्न है। हिंसा किसी को स्वभावतः प्रिय नहीं होती और वह दूसरे पक्ष द्वारा सिखाई जाती है तथा दोनों का ही दोष समान होता है। जब जनसाधारण शताब्दियों की बेड़ियों को तोड़ देने और नवसमाज का निर्माण करने के लिये करवट लेता है, तो शोषक-वर्ग, उनके खून-पसीने की कमाई उड़ा कर मोटे पड़ने वाले निहित स्वार्थ, उन पर अपने अधिकार और शक्ति का रौब दिखाना चाहते हैं। उस समय क्या जनता सब कुछ चुपचाप सह सकती है? महात्मा गांधी तक ने अहिंसा का पाठ पढ़ाते हुए कहा था कि वह कायरता की शिक्षा नहीं देते। यदि वे लोग जनजागृति को ल देना चाहें, तो मैं नहीं समझता कांग्रेस का एक भी सदस्य एक भी विद्वान् या अनुभवी व्यक्ति

[श्री एच० एन० मुखर्जी]

वैसी अहिंसा की शिक्षा देगा। अतः हिंसा छोड़ने और न छोड़ने का प्रश्न ही नहीं उठता। साम्यवाद का प्रत्येक दार्शनिक अत्यन्त सदय था और सामाजिक व्यवस्था की प्रणाली का अध्ययन करते-करते उनमें किसी के प्रति हिंसा द्वेष शेष न रहा था।

बर्नार्ड शा का कथन है कि इच्छा-प्राप्ति और इच्छा-अप्राप्ति दो सबसे बड़ी दुर्घटनायें हैं। कांग्रेस को नई दिल्ली के ठाट-बाट में इच्छा प्राप्ति हो गई है और उसकी देशभक्ति की भावना भी वहीं समाप्त हो गई है। तभी तो बिना विशेष कारण के ही निवारक-निरोध जैसे विधान बनाते हुए उसे शर्म नहीं मालूम पड़ती और वह उससे विरत नहीं होना चाहती। कांग्रेस दल की दशा बस बोरबन्स जैसी है, जिनके बारे में कहा जाता है कि वे न कुछ सीख सकते हैं और न कुछ भूल ही सकते हैं। एक बार वह साम्यवाद के विपक्ष में हो गई, तो फ़िर कभी उससे कुछ नहीं सीख सकती। कलकत्ते में सड़कों पर लोगों के प्रदर्शन थोड़े से पेशेवर उपद्रवकारियों द्वारा गढ़ नहीं लिए गये हैं, बल्कि वे जनता की रग-रग में बसे हुए हैं। इससे आंख बन्द नहीं की जा सकती जनता की आशा-आकांक्षाओं के प्रति उदासीन रहने वाली सरकार को जीवित रहने का कोई अधिकार नहीं है।

आज डा० काटजू ने पहले विधि और व्यवस्था का उपदेश दिया और फिर पं० नेहरू के प्रिय शब्द शांति और अक्षुब्धता का उपयोग किया उन्होंने यह भी कहा कि विदेशी सरकार के कानून तोड़े जा सकते हैं, अपनी सरकार के नहीं। मुझे गांधी जी द्वारा दिये गये उस समय के स्वतंत्र अमरीका के स्वतंत्र नागरिक थोरो का उद्धरण याद आता है कि यदि एक न्यायशील व्यक्ति को अन्याय से जेल भेजा जाता है, तो सभी न्यायपर लोगों का स्थान जेल ही होना चाहिये। अतः अनुचित विधानों का विरोध करने का जन्मसिद्ध अधिकार हमें मिलना ही चाहिये। यह नैतिक अधिकार राष्ट्रीय स्वाधीनता के आन्दोलन के ही समय में नहीं, बल्कि पुलिस राज्य स्थापित कर जनता के धैर्य की परीक्षा लेने वाले विधानों के तोड़ने के लिए भी है। हां हर समय सामान्य विधानों का तोड़ना अलबत्ता उचित नहीं ठहराया जा सकता। पर इस प्रकार क्रमशः पुलिस राज्य स्थापित करते जाना ठीक न होगा। जनता की आशा-आकांक्षाओं के साथ खिलवाड़ करने का प्रतिफल आपके लिए अत्यन्त विषम होगा। भूख और क्रोध की सीमायें अत्यन्त सूक्ष्म हैं। एक धैर्यशाली व्यक्ति को जब क्रोध आता है, तो उसका प्रवाह रोके नहीं रुकता। इस प्रकार के अत्याचारी अधिनियम सभ्य संसार में कभी सराहे नहीं गए और बिना भारी आपात के संविधान की उस विशेष शक्ति को ग्रहण नहीं करना चाहिये।

मैं कांग्रेस सरकार को चेतावनी दूंगा कि जनता से घबड़ाकर इस प्रकार के विधान न बनाए। जनता के लिए कुछ लाभ का काम करके ही वह अपनी यह घबराहट दूर कर पाएगी, घृणित विधान बनाकर कदापि नहीं। यदि आप जनता को छेड़ेंगे, तो उसका आवेश आपके द्वारा न चाहे गए रूप में ही उठेगा। अतः विधेयक की मूलभूत बुराइयों भूतकाल में इसे काम में लाने के स्वरूप, आपात काल का विद्यमान न होना, आदि किसी भी दृष्टि से हमें आज इस प्रकार के विधान में कोई औचित्य नहीं दिखाई देता। अतः दूसरा उपाय मैं यही सुझाता हूं कि इस विधेयक को जनमत के लिए परिचालित किया जाए, और मुझे भरोसा है कि प्रायः सर्वसम्मत रूप में ही जनता इस विधेयक को उठाकर दूर फेंक देगी।

श्री रघुरामय्या: श्री मखर्जी के भाषण पर मुझे आश्चर्य नहीं । मुझे तो आशा थी कि वे निवारक-निरोध के साथ पुलिस और सेना तक के न होने की भी बात कहेंगे । मुझे उनके व्यवहार का पूरा पता है । मैं श्री हीरेन मुखर्जी को बता दूं कि रूस, चीन आदि के एकतंत्रवादी पुलिस राज्यों में तो निवारक निरोध का प्रश्न इसलिए नहीं उठता कि वहां विरोधियों को सदा के लिए दबा दिया जाता है । देश में आज हिंसारत दल अप्रजातंत्री तरीके से समाज के विध्वंस में लगे हुए हैं और आजकल यही आपात चल रहा है । बाहरी खतरा ही सब कुछ नहीं । चोरबाज़ारी भी हैं, जो लोगों को भोजन नहीं मिलने देते और दूसरे लोग भी हैं, जो लोगों को हिंसा अपनाने के लिए भड़काते हैं ।

यदि श्री मुखर्जी यू० जी० (छिपे हुए) वाला अस्त्र भी अपना लें, तो दिल्ली में भी ट्राम पर हमला कर सकते हैं । लोगों की काल्पनिक परेशानियों को उभाड़ कर उनको अंगुली पर भी नचा सकते हैं ।

बिना जांच नज़रबन्दी मैं भी पसन्द न करता, पर इसमें वैसा उपबन्ध नहीं है । न्यायाधिकरण में उच्च न्यायालयके न्यायाधीश होते हैं और उसे नज़रबन्दी के आधारों से संतुष्ट किया जाता है । ब्रिटिश पूर्व दृष्टांतों को खोजने वाले लोग आनियमन १८-ख देखें । वहां तो गृह सचिव न्यायाधिकरण में न्यायाधीश को नियुक्त करता है और वह उसकी सिफ़ारिश मानने को बाध्य नहीं है क्या यहां भी ऐसा ही है ? ज़िरह और वकील की भी वकालत की गई थी, पर हम शीघ्रता के लिए संक्षिप्त जांच चाहते हैं । नियमित जांच में साक्षी चाहिए, पर हमारे मित्रों के इन अभियोगों में साक्षी सहसा खड़े नहीं किए जा सकते । मेरे पास अनेकों दृष्टांत हैं । एक साहब जिनकी नज़रबन्दी के लिए पुलिस बाहर खोज कर रही थी, एक सहायक मजिस्ट्रेट की अदालत के बरामदे में बैठे थे । पुलिस को उनका हुलिया पता न था, पर जानते हुए भी और लोगों को अपनी जान के भय से कुछ बताने की हिम्मत न हुई । उधर अचमपेत थाने पर हमला करते समय उन्होंने बन्दूकें ही नहीं लूटीं, बल्कि थानेदार की पत्नी तक को गोली से उड़ा दिया । अत: यहां शांति और प्रजातंत्र पर बड़े-बड़े भाषण तो दिए जाते हैं, पर क्या वह नीति छोड़ दी गई है ? क्या दुनियां की कोई दूसरी प्रजातंत्री सरकार ऐसी हिंसा सह सकती है ?

(**उपाध्यक्ष महोदय** अध्यक्ष-पद पर आसीन थे)

श्री गाडगिल के शब्दों में अपने नये प्रजातंत्र को खुल-छिप कर देश में लूट मचाने और उस पर कुल्हाड़ा चलाने वाले हत्यारों से बचाने के लिये नए तरीके अपनाने ही पड़ेंगे । दो ही उपाय हैं--या तो इन्हें कुचल दिया जाए, या सुधरने का अवसर दिया जाए । मैं दूसरा उपाय ही सुझाऊंगा और आशा करूंगा के ये लोग अब कुछ नैतिकता को अपना कर ही अपने राजनैतिक विचार फ़ैलायेंगे ।

जब यह विधेयक साम्यवादियों के विषय में कुछ न कह कर केवल देश की सुरक्षा ही करना चाहता है, तो यही लोग क्यों बुरा मानते हैं ? क्या वह देश की सुरक्षा नहीं चाहते, या वे पूरी-पूरी जांच भर चाहते हैं ? पर वे डा० काटजू और इस विधेयक के विरुद्ध इतना ज़हर क्यों उगलते हैं ? दूसरे विधानों की अपेक्षा इसे ही क्यों विशेष महत्व देते हैं ? ऐसे भयानक आंतरिक आपात के समय साक्षी और वकीलों का उपबन्ध संभव नहीं । पर फ़िर भी हम ब्रिटेन के नियम १८-ख की अपेक्षा अधिक उदार हैं । इतिहास बताता है कि हम एक बार आंतरिक झगड़ों के फलस्वरूप अपनी आज़ादी खो चुके हैं । अब वह बात दुहराई

[श्री रघुरामय्या]

नहीं जा सकती। यदि साम्यवादी न्याय पर रहकर देश की सुरक्षा को खतरे में नहीं डालना चाहते तो उन्हें इस विधेयक से आपत्ति क्यों है? इन परिस्थितियों के कारण ही न चाहते हुए भी हम इसका समर्थन कर रहे हैं। चीन से लौटे हुए एक व्यक्ति ने बताया है कि वहां चोरबाज़ारियों, प्रत्यांदोलन-कारियों और विरोधियों को वैध रूप से बिलकुल अरक्षित बना दिया गया है। हम वह नहीं करना चाहते। हमें तो प्रजातंत्र का ही मध्यम मार्ग चुनना है। इसे बिना जांच वाली नहीं, पर हां, संक्षिप्त जांच वाली नज़रबन्दी कहा जा सकता है और परि-स्थितियों से विवश होकर ही हम इसे अपना रहे हैं।

श्री मेघनाद साहा (कलकत्ता उत्तर-पश्चिम): आज प्रातः डा० काटजू ने अत्यन्त विद्वतापूर्ण भाषण दिया, पर एक वकील के नाते उन्होंने एक ही पक्ष सामने रखा। स्वतंत्र रूप से चुने जाने के बाद मुझे बंगाल की विभिन्न जेलों में पड़े हुए अनेकों नज़रबंदियों के पत्र मिले। इस सम्बन्ध में सदन के नेता ने मुझ से कहा था कि एक वैज्ञानिक के नाते मैं उनका वैज्ञानिक-विश्लेषण करूं। मैंने जब अपने मित्रों की सहा-यता से वे ४-५ सौ अभिरोप-पत्र पढ़े तो मुझे पता चला कि उन सब में एक यही अभि-योग था—'आप साम्यवादी दल के सदस्य हैं'। एक राजनीतिक दल का सदस्य होना काफ़ी नहीं, और न्यायाधीशों ने इसे काफ़ी न समझा, पर फिर भी उनका पुनर्विलोकन नहीं हुआ। उनमें से ५० प्रतिशत मज़दूर-कार्यकर्त्ता हैं, किसी दल के सदस्य नहीं। कलकत्ता की एक फ़र्म के युवक कर्मचारी अरविंद घोष के विरुद्ध एक यही अधिरोप है कि उसने मैनेजर को गाली दी। इतने पर ही वह तीन साल से जेल में है। क्या यह उचित है? पीछे मुझे पता चला कि उस फ़र्म से बड़े शक्तिशाली व्यक्ति का संबंध है। तुषार चटर्जी का भी उल्लेख हो चुका है। ये नज़रबन्द १७ रुपया प्रति मास पर रहते हैं। डमडम जेल कोई ससुराल नहीं है, और स्वास्थ्य गिरना ही चाहिये। तो क्या मज़दूर-आंदोलन के ही लिए एक ऐसे विद्वान को जेल में सड़ने देना चाहिये। आप लोगों ने श्री चटर्जी को यहां देखा है। क्या वह अपराधी लगते हैं?

श्री मुखर्जी द्वारा सन् १९३० की क्रांति में भाग लेने वाले गणेशचन्द्र घोष का भी उल्लेख किया जा चुका है। उस समय महात्मा गांधी और मोती लाल नेहरू के बिना जांच पकड़ लिए जाने पर कुछ युवकों ने रोषाविष्ट हो चटगांव शस्त्रागार पर आक्रमण किया था। उन युवकों को भून दिया गया, पर यह व्यक्ति बच गया। पीछे यह साम्यवादी बन गया। सन् १९४७ में कांग्रेस राज्य में १९३० में उस षड़यंत्र में भाग लेने के अपराध पर उसे जेल में डाल दिया गया। पर जनता ने उसे बंगाल का विधान सभा का सदस्य चुनकर अपना निर्णय दे दिया है। क्या कांग्रेस राज्य में उसे जेल में पड़ा रहना चाहिये?

डा० काटजू सहृदय और दयाशील हैं। उनसे मेरी मैत्री तभी से है, जब स्वयं उनको इसी प्रकार जेल में ठूंसा जाता था। वे इस विधान को कुछ भी ध्यान में रखकर बनायें पर इसका प्रशासन उसी बदनाम खुफिया विभाग की रिपोर्ट पर जिला आदि के पदाधिकारियों द्वारा होना है। इस बुद्धिमान खुफिया विभाग ने एक व्यक्ति (शायद अब्दुल रजाक खान) के विरुद्ध यह अधिरोप पत्र बनाया था कि वह मनीपुर में सेना खड़ी करके पहले पाकिस्तान पर कब्जा कर लेगा और फिर कलकत्ते पर। ऐसी सूचनाएं

पागलखानों में ही जानी चाहियें थीं उस सरकार के पास नहीं जिसने इतनी ही बात पर उसे बिना जांच तीन वर्ष से जेल में डाल रखा है। एक व्यक्ति पर यह अधिरोप था कि वह मंचूरिया जाकर वहां से अस्त्र लाएगा और देश में विद्रोह खड़ा कर देगा। डा० काटजू यदि ये अधिरोप पढ़ें, तो उनको मेरी बात की सत्यता का पता लग जायगा। अतः मुझे भय है कि इस विधेयक का भारी दुरुपयोग होगा। इन व्यक्तियों में ९८ प्रतिशत निरपराध होते हैं। अनेक दलों ने हिंसा नीति त्याग कर संसदीय-प्रक्रिया में विश्वास रखते हुये चुनाव लड़े हैं और इधर से भी यह विधेयक त्याग दिया जाना चाहिये।

श्री गाडगिल ने कलकत्ते के प्रदर्शनों को भी इस विधेयक के लिए एक हेतु बताया था। पर उनसे साम्यवादी दल का कोई संबंध नहीं। वे मेरी अध्यक्षता में बनी दुर्भिक्ष प्रतिरोध समिति द्वारा संगठित किए गए थे। यह भूख की मांग है कोई राजनीतिक मांग नहीं। पर श्री गाडगिल इस विधेयक को उन भूख-प्रदर्शनों के कारण आवश्यक मानते हैं। यदि देश के लाखों व्यक्ति भूखों रहे, या उनको एक बार भोजन मिला, तो अनेकों निवारक-निरोध उनको क्रांति करने से बिरत नहीं कर सकते। याद रखें, अनेकों क्रांतियों का जन्म भूख में होता है। फ्रांस की क्रांति भूखी औरतों द्वारा बिलास में डूबे सम्राट के सामने प्रदर्शन से शुरू हुई थी। रूस की क्रांति पेट्रोग्राड आदि नगरों की भूख में ही पैदा हुई थी और १९१७ की पहली क्रांति ने ही बोल्शेविक क्रांति को जन्म दिया था। अतः कलकत्ते के प्रदर्शनों के पीछे साम्यवादी दल नहीं बल्कि भूख है। अतः मैं सरकार से इस काले विधेयक को छोड़ कर मिल जुल कर खाद्य, वस्त्र और मकान आदि की समस्याएं सुलझाने का अनुरोध करूंगा।

डा० कृष्णस्वामी (कांचीपुरम्): गृह मंत्री आदि के भाषण सुनते समय मुझे टेनरी ग्राटन के शब्द याद आ गए: 'वचनों में महती उदारता, तर्कों में महती कृपणता, स्वभाव में उग्रता और पद में न्यूनता।' गृह मंत्री ने अपने भाषण में संसद् सदस्यों को विविध प्रकार के असंगठित सदस्यों का दल बताया था। पर मैं पूछता हूं कि मंत्रि-परिषद् ने क्या सोचकर यह विधान बनाने का निश्चय किया है। हमारे प्रत्येक सुझाव को ठुकराया जाता है और फिर कहा जाता है कि विरोधी-दल रचनात्मक सुझाव नहीं दे सकता।

पहली बात संविधान में निवारक निरोध के उपबन्ध के बारे में कही गई थी, पर स्वयं संविधान द्वारा मौलिक अधिकारों वाले अध्याय में संसद् की सर्वप्रभुत्वसंपन्नता पर बंधन लगाए गए हैं। निवारक-निरोध का उपबन्ध करते समय संविधान प्रणेताओं ने यह न सोचा था कि राज्य द्वारा किसी आपात के न होने पर भी इसके अधिकार की दुहाई दी जायगी। उन्होंने तो युद्ध या भारी आपात के समय अशांति और अव्यवस्था रोकने के लिए सरकार को यह शक्ति दी थी। अतः इस अस्त्र का प्रयोग आज आवश्यक ठहराना उचित नहीं है।

नागरिक स्वाधीनताओं पर रोक लगते समय हमें समझ लेना चाहिये कि उनकी परिभाषा क्या है। उसे बिना समझे आप हमारे विरोध को भी न समझ पायेंगे। इतिहास बताता है कि लोगों ने निवारक निरोध का सदा विरोध किया है। स्टुआर्ट काल के संसद्-सदस्यों द्वारा 'अधिकारों की याचिका' के अनुच्छेद ५ में कहा गया था: महामहिम सम्राट, आपकी विधि का पालन करने वाले अनेकों न्याय पर लोगों को अकारण बन्दी बनाया गया और बंदी-प्रत्यक्षीकरण के आवेदनों पर न्यायाधीशों द्वारा उनकी मुक्ति

[डा० कृष्णास्वामी]

का आदेश दिये जाने पर भी उनको विभिन्न जेलों में भेज दिया गया । अतः स्वतंत्रता के समर्थक सदा इसके विरुद्ध रहे हैं । यह प्रकृति-न्याय के विरुद्ध है, दूसरे एक दल के दोष दूसरे पर मढ़ कर और उनकी स्वाधीनतायें कम करके पूर्व दृष्टांत खड़ करने का प्रतिफल प्रजातंत्र के लिए अच्छा नहीं होता । इसी कारण हम सभी विरोधी-दलों वाले व्यक्ति एकमत होकर इसका विरोध कर रहे हैं।

यह विधान संसद् के समक्ष तीसरी बार आ रहा है । यह आपात कब तक चलेगा? कब सामान्य युग आयेगा ? निग्रहकारी विधियों के बने चले आने पर अधिकारी सोचने लगते हैं कि उनके बिना देश खतरे में पड़ जायगा । निवारक-निरोध का मूल तत्व या मूल कारण यही ह कि पर्याप्त साक्ष्य न होने पर भी संदेहमात्र पर ही किसी को नज़रबन्द कर लेना । और यह संदेह की दीवाल पुलिस, जासूस, और गूड दुरभिसंधि रखने वाले लोगों द्वारा दी गई सूचना के आधार पर खड़ी की जाती है । फिर फायल मजिस्ट्रेट तक जाती है और वह नज़रबन्दी का आदेश निकाल देता है । नज़रबन्द को बहुत दिनों बाद कहीं थोड़े से कारण बताये जाते हैं कि उसे क्यों गिरफ्तार किया गया । संविधान के अनुच्छेद २२ में सामान्यतः किसी भी बंदी के २४ घंटे में न्यायालय के सामने ले जाये जाने का उपबन्ध है, पर नज़रबन्द को अपवाद स्वरूप माना गया है । किंतु २२(५) में यथाशक्य शीघ्र आधारों के बताये जाने का जो उपबन्ध है उसे प्रायः सभी मामलों में २२ (६) के उप-बन्ध द्वारा व्यर्थ कर दिया गया है और प्रायः सभी मामलों में लोकहित में विरुद्ध समझकर आधार प्रकट नहीं किये जाते । यह नहीं होना चाहिये । आधार न जानने के कारण चारा नज़रबन्द परामर्शदाता बोर्ड के सामने अपनी निर्दोषता भी प्रमाणित नहीं कर पाता ।

मैं उद्धरण देकर सिद्ध कर दूंगा कि यह विधेयक पुराने अधिनियम में कोई भी सुधार नहीं करता । परामर्शदाता बोर्ड के सामने जांच का उपबन्ध प्रवंचना भर है, क्योंकि सरकार सभी तथ्य उसके सामने रखने के लिय बाध्य नहीं है । पूरे आधार न ज्ञात होने पर बोर्ड को संदेह रहेगा और नज़रबन्द का छूट सकना कठिन होगा । जिरह का उपबन्ध न रहने से वह बोर्ड को और भी कायल न कर पाएगा । मजिस्ट्रेट द्वारा दो सप्ताह के अन्दर-अन्दर राज्य सरकार को सूचना भेजने वाली बात अवश्य मुझे काफी संतोषजनक प्रतीत हुई और मैंने सोचा कि इस बात में अवश्य कुछ रियायत दी जा रही है। पर खंड (३) के उपखंड (३) में कहा गया है कि इस धारा के अधीन आदेश निकालने के बाद अधिकारी अपनी सरकार के पास आधारों की तथा अपने विचार से आदेश को आवश्यक बनाने वाले कारणों की सूचना भेजेगा । तो क्या इसका अर्थ यही है कि वह अपने विचार से आवश्यक कारणों की ही सूचना भेजेगा ? इस से तो राज्य सरकार पूरी बात को न परख सकेगी । पर यदि सरकार को सभी बातें न बताई गईं, तो वह फिर से पूरी जांच कैसे कर सकेगी और प्रशासनीय ज्यादती कैसे रोक सकेगी । पर मजिस्ट्रेट नज़रबन्द के पक्ष के कोई विवरण कभी प्रकट न करेगा, और इस प्रकार राज्य सरकार की सामर्थ्य के ऊपर भारी सीमा सी लग जायेगी और वह कारणों की ठीक से जांच न कर सकेगी ।

फिर इस धारा में राज्य सरकारों के ऊपर केन्द्र सरकार को नज़रबन्दी की आवश्यकता बताने की भी बात डाली गई है । इस धारा के अनुसार भी राज्य सरकार अपने

विचार से आदेश को आवश्यक बनाने वाले कारणों की ही सूचना केन्द्रीय सरकार के पास भेजेगी । यहां भी पूरे विवरण बताने का उपबन्ध नहीं किया गया है । मैं इन धाराओं के विषय में माननीय मंत्री से एक स्पष्टीकरण चाहूंगा । यदि केवल सूचना देना भर ही इस धारा का लक्ष्य नहीं है, तो क्या केन्द्रीय सरकार के ऊपर स्वयं उस मामले की फिर से जांच करने का भार डाला गया है ? फिर ऐसा भी कोई उपबन्ध नहीं है कि आदेश केन्द्रीय सरकार के विशेष आदेश के बिना एक निश्चित अवधि से अधिक न चले । यदि यह उपबन्ध होता तो यह समझा भी जा सकता कि केन्द्रीय सरकार द्वारा वस्तुतः पुनर्विलोकन का उपबन्ध किया जा रहा है और ऐसा करके नज़रबन्द की परेशानी बहुत कुछ कम की जा रही है । और उस के मामले की फिर जांच होने जा रही है । कारण स्पष्ट है कि 'संतुष्ट होने' वाली बात बहुत कुछ व्यक्ति विशेष से संबद्ध है ।

ऐसा भी नहीं लगता कि केन्द्रीय सरकार द्वारा आधारों के अपर्याप्त माने जाने पर राज्य सरकार उसे छोड़ने के लिये बाध्य है । अतः बेचारे नज़रबन्द को कोई सुविधा नहीं दी गई है । क्या परामर्शदाता बोर्ड द्वारा सुनवाई की प्रणाली में सुधार का अवसर नहीं आया है ? चूंकि बोर्डों की कार्यवाही खुले खुले नहीं होती अतः प्रचार रोक कर लोकहित की पर्याप्त सुरक्षा कर ली गई है । अब नज़रबन्द के लिये वकील का प्रबन्ध करने और संबंधित सरकार द्वारा उसे पूरे आधार बताए जाने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये, क्योंकि थोड़े से आधार बताने पर नज़रबन्द वैध प्रतिनिधित्व न कर सकेगा । एकांत में बैठने वाले परामर्शदाता बोर्ड को आधार न बताने से कौन सा लोक-हित सधेगा ?

न्यायालयों ने माना है कि भाषण भी बाधक हो सकते हैं और संबंधित अंश बताना भी आवश्यक नहीं है । अभी उस दिन दिल्ली में राम सिंह के अभियोग में मुझे निवारक निरोध की इस कमी का पता चला । । एक संक्षोभकारी भाषण देने के अधिरोप में उनको गिरफ्तार किया गया, पर उनको भाषण के वे अंश तक न बताय गए । न्यायाधीश भी इस विषय में अशक्त थे, क्योंकि उन भाषणों के अंशों की जांच करना उनके हाथ में नहीं था बल्कि इसके लिये तो अधिकारियों को ही संतोष करना था । इसके विरुद्ध न्यायाधीश श्री बोस ने वीरतापूर्ण विमति-निर्णय इतिहास को वस्तु बनेगा । विमति-निर्णय विधि की पोल खोल देते हैं और अधिक महत्वपूर्ण होते हैं । श्री बोस ने कहा था कि 'दूसरे के तर्कों से जब दूसरा व्यक्ति इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि भाषण के कुछ अंश राज्यद्रोहपूर्ण हैं, तो उन अंशों के विवरण न विदित होने पर अन्य व्यक्ति यह नहीं समझ सकता कि अधिकारी उस निष्कर्ष पर कैसे पहुंचे और यह ग़लत भी हो सकता है । बोर्ड को साधारणतः संक्षोभकारी अंशों समेत पूरा भाषण मिले या कम से कम उनका सारांश, अन्यथा नज़रबन्द अपनी स्थिति स्पष्ट न कर पायेगा और उसका समावेदन व्यर्थ जाएगा ।'

उपाध्यक्ष महोदय : एक-दो पंक्तियों को छोड़ लंबे उद्धरण देने का यहां व्यवहार नहीं है ।

डा० कृष्णस्वामी : निवारक निरोध अधिनियम की पोल बताने के लिए मैं वहीं से एक ही उद्धरण और दूंगा । डा० बोस कहते हैं कि "सरकार को परेशानी में डालने वाले प्राविधिक निर्वचन में न पड़ते हुए और सरकार पर भारी बोझ न डालते हुये मैं उससे यही कहूंगा कि इन मामलों में थोड़े से समय और शक्ति का व्यय करें चूंकि इन विषयों में प्रचार ठीक-ठीक

[डा० कृष्णस्वामी]

अधिरोपों का बताया जाना, आत्म-रक्षा में बोल सकना आदि सुरक्षाएं नहीं हैं, इसलिए सरकार को इन विषयों में विशेष दया और सहानुभूति रखनी चाहिये, और उन्हें पूरी सहायता पहुंचानी चाहिये।" भाषणों के उन अंशों तक का बताया जाना नज़रबन्द के लिए बड़ा बाधक होता है। क्या अब तक इसका समय नहीं आया ?

यह समय देश के लिये खतरे और संकट का समय बताया जा रहा है, पर वस्तुतः वह समय बीत चुका है। पूरे दक्षिण-पूर्व एशिया में हमारे ही देश में सबसे अधिक शांति है। यह चुनावों से भी स्पष्ट हो गया है। अतः निवारक निरोध अधिनियम के निरसन का इस से अच्छा अवसर शायद ही मिले।

गृह मंत्री यदि सौराष्ट्र और राजस्थान की स्थिति का नियंत्रण इस विधान के लागू हुए बिना असंभव पाते हैं, तो इसे पूरे देश में क्यों लागू करना चाहते हैं ? कुछ गुटों के कारण सभी की स्वाधीनता छीन लेना कहां का न्याय है। राजनीतिक दलों के विरुद्ध इसका उपयोग न करने के उनके आश्वासन को सत्य माना भी जाये, पर वास्तविक महत्व तो विधेयक के उपबंधों का है। नहीं तो हम विधान निर्माता के नाते अपना कर्त्तव्य भूल जायेंगे। बंगाल और बम्बई के अध्यादेश कुछ उपद्रवी फ्रांसीसियों को भगाने के लियें निकाले गये थे, पर बाद में दूसरे लोगों के विरुद्ध भी उनका उपयोग किया गया।

अतः यदि आप इस विधान को चलाना ही चाहते हैं, जिसकी मैं कोई आवश्यकता नहीं समझता, तो कृपया पुनर्विचार करिये और उसमें रखी गई सुरक्षाओं को नज़रबन्द पर न्याय करने के लिये और बढ़ा दीजिये। उसे कम से कम सब तथ्य बताये जायें जिससे वह शुरू में या अपील के समय उनकी पूरी जांच करा सके। अच्छा तो यह होता कि इस विधान को वापस ही ले लिया जाता, पर कम से कम नजरबन्द के लिये उदारता पूर्ण सुरक्षाओं का उपबन्ध तो होना ही चाहिये, जिस से लोगों को थोड़ी सी स्वाधीनता तो बनी रहे।

श्री एन० पी० नथवानी (सोरठ) : श्री हीरेन मुखर्जी ने निवारक निरोध की प्रकृति के संबन्ध में न्यायाधीशों के उद्धरण दिये थे कि यह प्रजातंत्र के विरुद्ध है और आपात के बिना साधारणतः इस का उपयोग नहीं होता। पर यह निर्णय तो संसद ही करेगी कि आपात है अथवा नहीं और निवारक निरोध जरूरी है या नहीं। उधर वाले सभी सदस्यों ने ये तर्क रखे हैं कि आज वैसी परिस्थितियां नहीं हैं। पर मेरे छोटे से सौराष्ट्र राज्य में तो भारी खतरे का सामना करने और स्थिति पर नियंत्रण करने के लिये निवारक निरोध अधिनियम का उपयोग आवश्यक हो ही गया था, पर आज पटियाला संघ और राजस्थान में भी वैसी ही स्थिति पैदा होती जा रही है।

६ म० प०

सौराष्ट्र में भूपत के जत्थे के कारनामे १९४९ में शुरू हुए और लूट ही उसका लक्ष्य थी, राजनीति नहीं। पीछे राज परिवार के वंशज और कुछ विशेष अधिकार रखने वाले भूस्वामी गिरासदारों से उसे काफी सहायता मिली। गिरासदारी प्रथा में काश्तकारों की दशा बहुत बुरी थी और वे बुरी तरह से सताये जाते थे। नई सरकार ने उनकी दशा सुधारने के लिये पग उठाये। लगभग ३० कर समाप्त कर दिये और काश्तकारों और गिरासदारों की आय के हिस्से निश्चित कर दिये। इस से गिरासदार

और भी चिढ़े और किसानों की फ़सलों में आग तक लगाने लगे। सरकार ने जब सफलतापूर्वक उन्हें किसानों को सताने से रोक दिया तो उनके कुछ नेताओं ने डाकुओं के दल का उपयोग करने का षडयत्र किया। उनकी सहायता से वे किसानों को आतंकित करने लगे और सरकार पर भूमि सुधार की नीति छोड़ देने के लिये दबाव डालने लगे। अंत में जब गिरासदारों ने समझ लिया कि सरकार दृढ़ है, तो १९५१ के मध्य के लगभग वे सरकार को सहयोग देने लगे और भूमि सुधार विधान सहमत रूप में पारित हुआ। फिर भी कुछ गिरासदार और भूतपूर्व शासक के भाई-बन्द सरकार के विरोध में बने रहे। तब तक चुनाव का समय आ गया और ये लोग चुनाव में जैसे भी हो जीतकर मंत्रिमंडल बनाने के स्वप्न देखने लगे। २१ जनवरी, १९५२ को प्रधान मंत्री श्री धेवर के चुनाव क्षेत्र के एक गांव खरचिया में १२ हत्यायें हुईं। उसके बाद सितंबर से जनवरी तक के समय में जब सभी दल चुनाव आंदोलन चला रहे थे, लगभग १६ हमले और २८ हत्यायें हुईं। इसका लक्ष्य एक तो कांग्रेस सरकार को अयोग्य सिद्ध करना था और दूसरे जनता को आतंकित करना था। वे जानते थे कि जनता कांग्रेस सरकार के साथ है। अतः उन्होंने यह उल्टा रास्ता अपनाया। स्वयं मेरे चुनाव क्षेत्र में जैतपुर के देहाती इलाके में मुझे और राज्य विधान सभा के कांग्रेस उम्मीदवार को पोलिंग एजेंट तक मिलना मुश्किल हो गया था। यद्यपि सभी हमारे साथ थे, पर सताये जाने के आतंक से सामने न आ सकते थे। इन डकैतियों के बाद छोड़ी गई परचियों के द्वारा भी राजनीतिक लक्ष्य स्पष्ट हो जाता है। २३ सितंबर, १९५१ को लीलखा में हुए हत्याकांड के बाद एक परची पाई गई थी जिस में कहा गया था कि 'चुनाव प्रचार के लिये पास के गांव में आने वाले श्री धेवर भाई साहब को हम रुपये तो भेंट नहीं कर सकते, पर ये दो नारियल (आदमियों के सिर) भेंट करते हैं। कांग्रेस को वोट देने वाले प्रत्येक गांव में यही किया जायेगा।'

डाकुओं द्वारा प्रयुक्त ३०३ रायफलों, निषिद्ध बोरों वाली पिस्तौलों और सरकारी अस्त्रागारों में बनी कारतूसों से भी स्पष्ट हो गया कि उनको शासकों और गिरासदारों से पूरी सहायता मिल रही है, क्योंकि इन चीजों को शस्त्र अधिनियम के अनुसार भूतपूर्व शासकों को छोड़ और कोई नहीं रख सकता। यह दिसंबर १९५१ और जनवरी, १९५२ तक चलता रहा। सरकार ने सूचना प्राप्त करने के लिये ५०,००० रुपयों तक के इनाम बोले। निकट के राज्यों से अनुभवी पुलिस वाले बुलवाये, पर शक्तिशाली लोगों का समर्थन प्राप्त होने के कारण फिर भी उनको न पकड़ा जा सका। ऐसी परिस्थिति में निवारक निरोध अधिनियम का उपयोग आवश्यक हो गया। लोग समझते हैं कि ये लोग बड़े शक्तिशाली हैं और कभी न कभी बदला जरूर ले लेंगे, अतः इनके विरुद्ध प्रत्यक्ष साक्षी नहीं मिल सकती और वैध कार्यवाही नहीं की जा सकती। चुनाव के बाद सरकार ने तुरंत पग उठाये। फलतः कुछ लोग पकड़े गये और भूपत और उसके कुछ साथी पाकिस्तान भाग गये। पर अभी बहुत से खतरनाक लोग भागे हुए हैं, अतः सौराष्ट्र की स्थिति को अभी सुधरा हुआ नहीं माना जा सकता। और उस पर ध्यान रखना पड़ेगा। इसलिये सौराष्ट्र के लिये यह विधान अत्यंत आवश्यक है।

जनमत के लिये इसके परिचालन करने के संबन्ध में भी एक संशोधन आया है। जहां तक मेरे राज्य का संबन्ध है,

[श्री एन० पी० नथवानी]

पर तो जनता बहुत समय से त्राहि-त्राहि की पुकार मचा रही थी और अब उसे शांति ही मिली है। इस विधान द्वारा शक्तिशाली लोगों को पकड़ा जाता हुआ देखकर उसने इसका स्वागत ही किया है। इस लिये वहां जनमत लेने का प्रश्न ही नहीं उठता।

परिस्थितियों को अच्छी तरह स्पष्ट कर देने के ही लिये मैंने इतना समय लिया था। कुछ माननीय सदस्यों ने यह पूछा है कि क्या दुनिया के किसी देश में ऐसा विधान चल रहा है ? मैं उनसे पूछूंगा कि क्या प्रजातंत्री दुनिया में कहीं ऐसा वर्ग है, जो स्वयं ही हिंसा नहीं अपनाता, बल्कि डाकुओं से भी सहायता लेता है ? वहां ऐसा होने पर सरकार और भी अधिक शक्ति प्राप्त कर लेती।

मैं मानता हूं कि सं. रा. अमरीका में निवारक निरोध अधिनियम नहीं है, पर हाल में वहां एक विधान पारित हुआ है, जिसे 'श्रम संबन्ध अधिनियम, १९४७ की असाम्यवादी शपथपत्र की आवश्यकता' कहा जाता है। अमरीका में न तो कोई युद्ध चल रहा है, न आपात। न वहां पर साम्यवादी दल पर कोई रोक है। फिर भी इस विधेयक द्वारा मौलिक अधिकार और नागरिक स्वाधीनता पर भारी प्रहार किया गया है, क्योंकि इस के अनुसार मान्यता प्राप्त श्रम संघों का कोई पदाधिकारी साम्यवादी दल से संबन्धित नहीं होना चाहिये नहीं तो वह उस संघ का प्रतिनिधित्व न कर सकेगा। यह विचार स्वतंत्र्य ही नहीं छोड़ता क्योंकि किसी का अपने को साम्यवादी कहने लगना ही उसे हिंसावादी नहीं बना देता। फिर वहां के राष्ट्रपति द्वारा निकाले गये निष्ठा आदेश ने महान्यायवादी को यह शक्ति दे दी है कि वह किन्हीं भी संगठनों को विध्वंसात्मक घोषित कर दे और फिर इसकी कोई सुनावाई नहीं होती। अतः नागरिक स्वाधीनता आसमान से नहीं लटकती, वह शांति और व्यवस्था होने पर ही मिल सकती है।

कुछ विरोधी वक्ताओं ने कहा था कि यह विधान सरकारों को मनमानी शक्तियां दे देता है। यह भी सुझाया गया था कि सरकार या पदाधिकारी का संतोष ही सब कुछ न होना चाहिये, बल्कि न्यायालय द्वारा निर्णीत होने वाले कुछ प्रमाप रहने चाहियें। पर निवारक निरोध के संबन्ध में यह लक्ष्यात्मक प्रमाप निश्चित नहीं किया जा सकता। भारत के भूतपूर्व मुख्य-न्यायाधीश ने भी श्री गोपालन के अभियोग में पृष्ठ १२१ पर यही कहा था : "न्यायालय द्वारा चाहे गये लक्ष्यात्मक प्रमाप के न होने के आधार पर भी धारा ३ का विरोध किया जाता है। स्पष्ट ही लक्ष्यविशेष को प्राप्त करने या न करने संबन्धी आचरण को छोड़ ऐसा प्रमाप निश्चित नहीं किया जा सकता निवारक निरोध में विभिन्न कृत्यों के एकत्र प्रभाव के आधार और संदेह पर कार्यवाही की जाती है। किंग बनाम हैलीडे के अभियोग में लार्ड फिनले की उक्ति के अनुसार न्यायालय संदेह के विवरणों पर विचार करने की जगह नहीं है। यह बात निवारक निरोध के विषय में उठती है, दंडात्मक निरोध के विषय में नहीं। निवारक निरोध व्यक्ति विशेष को विशेष कार्य करने से रोकने के लिये प्रयुक्त होता है और उद्देश्य विशेष के साधक सभी कृत्यों की गणना असंभव है। अतः दंडात्मक निरोध को विधान के अस्पष्ट होने से रोकने के लिये पर्याप्त प्रमाप माना गया है।"

अब मैं विधेयक में पर्याप्त सुरक्षाओं के अभाव का उल्लेख करने वाले आलोचकों

से कहूंगा कि वे संबंधित पदाधिकारियों द्वारा तुरंत राज्य सरकारों को रिपोर्ट भेजने वाले उपबन्ध को भूल जाते हैं ।

उपाध्यक्ष महोदय : क्या माननीय सदस्य और समय लेंगे ?

श्री एन० पी० नथवानी : हां, दस पंद्रह मिनट और ।

उपाध्यक्ष महोदय : सदन अधीर हो रहा है अब वह स्थगित होगा ।

इसके पश्चात् सदन की बैठक सोमवार २१ जुलाई, १९५२ के सवा आठ बजे तक के लिए स्थगित हो गई ।